शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 7 अंक 27 **त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका** 10 जुलाई, 2023

पीयर रिव्यू समिति :
डॉ.शांति नायर
डॉ.के श्रीलता
डॉ.बी.अशोक

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु.सी.आर
डॉ.षीना.यू.एस
डॉ.सुमा.आई
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी.एस.एस
डॉ.धन्या.एल
डॉ.कमलानाथ.एन.एम
डॉ.अश्वती.जी.आर

इस अंक में

संपादकीय	:	
समय की विद्रूपताएँ और व्यक्ति-मन की बेचैनियाँ	: डॉ. शान्ती नायर	6
आधुनिक जीवन बोध के परिप्रेक्ष्य में निर्मल वर्मा के कथा साहित्य का अध्ययन	: डॉ. वीणा जे	15
भारतीय भाषाएँ और नयी शिक्षा नीति	: डॉ. पवन कुमार शर्मा	18
सामाज्यवाद के खिलाफ गिरिराज किशोर के जूझते तेवर- 'असलाह' उपन्यास के विशेष परिप्रेक्ष्य में	: डॉ.पूर्णिमा आर	21
'तीसरा लिंग विमर्श' के सन्दर्भ में 'तीसरी ताली'	: डॉ.रीनाकुमारी.वी.एल	24
वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना	: डॉ.सुजित.एन.तंपी	27
आधुनिक समय में शोषित बचपन	: डॉ.विकास कुमार सिंह	30
'तुक' कहानी में चित्रित पारिवारिक घुटन	: डॉ.षेर्लिन	34
मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में स्त्री-संघर्ष	: अफीफा फातिमा शेक	37
मानवतावादी कवि धूमिल	: डॉ.माजिदा एम	39
हिन्दी का वैश्विक महत्व	: डॉ.प्रीति.के	43
'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी में उत्तराधुनिक समय की पहचान	: डॉ.सी.बालसुब्रह्मण्यम	46
जयप्रकाश कर्दम की कविताओं में सामाजिक यथार्थ	: दिनेश अहिरवार	48

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946253648, 9946679280

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

आधुनिक हिन्दी कविता

हिन्दी साहित्य के इतिहास के 'आधुनिक काल' के शुरू में रचनाओं की मूल संवेदना रही थी 'देश की आज़ादी'। इस समय राष्ट्रीयता तथा स्वाभिमान की भावनाओं के साथ साहित्य-सृजन किया गया। नवजागरण का स्वर रचनाओं में मुखरित हुआ। आधुनिक काल का प्रथम चरण 'भारतेन्दु काल' (पुनर्जागरण काल; 1868 से 1900 तक) है और दूसरा चरण 'द्विवेदी काल' (जागरण सुधार काल; 1900 से 1920 तक) है। दूसरे चरण में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती पत्रिका' के संपादक के पद पर रहके (1923 से) हिन्दी भाषा और साहित्य को व्यवस्थित रूप दिया। 'छायावादी युग' (1920 से 1936 तक) की हिन्दी कविताओं में मनुष्य और प्रकृति के सूक्ष्म संबन्ध के चित्रण से आध्यात्मिक छाया का भान रहा। छायावाद के चतुष्टयों के रूप में जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पंत विख्यात हुए। सन् 1916 में निराला ने मुक्त छंद में 'जुही का कली' लिखी कविता । इस युग में राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के कवि माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्णशर्मा नवीन, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान, सियारामशरण गुप्त आदि भी कविता करते थे। फिर 'प्रगतिवादी युग' (1936-1943) में मार्क्सवादी दर्शन के प्रभाव से केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, नरेन्द्रशर्मा, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला आदि कवि कविताएँ लिखने लगे।

'प्रयोगवाद' के प्रवर्तक अज्ञेय के संपादकत्व में सन् 1943 में 'तारसप्तक' प्रकाशित हुआ और प्रयोगधर्मिता कविता का साध्य मानी गयी। इस काव्यधारा को 'प्रयोगवाद' नाम आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने अपने निबंध 'प्रयोगवादी रचनाएँ' में दिया। कविता में मध्यवर्गीय व्यक्ति सत्य का चित्रण किया जाने लगा। अस्तित्ववाद 'कविता' की आधारशिला बन गया। प्रयोगवादी कवियों ने नये बिंबों-प्रतीकों-उपमानों का प्रयोग करके कविता को नयी छवि दी। प्रयोगवाद का विकास सन् 1953 के बाद 'नयी कविता' के रूप में हुआ। नये कवि मुक्तिबोध ने 'नयी कविता' के विषय-वैविध्य के बारे में कहा कि 'नयी कविता का स्वर एक नहीं, विविध है।' अनुभूति की सच्चाई और बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि 'नयी कविता' की विशेषताएँ हैं। यह आस्था-अनास्था, हर्ष-विषाद, राग-विराग, आसक्ति-अनासक्ति सबको अपने में समेटती है। 'नयी कविता' का प्रतीकात्मक शिल्प-विधान समझने के लिए अज्ञेय की ये पंक्तियाँ देखिए-

'साँप तुम सभ्य तो नहीं हुए
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ
दोगे उत्तर
फिर कहाँ सीखा डसना
यह विष कहाँ पाया।'

सन् 1960 के आसपास कई काव्यांदोलन विकसित हुए, जिनमें अधिकांश अल्पायु के रहे। इनमें 'अकविता आंदोलन' को हिन्दी साहित्य के विख्यात आलोचक डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त ने 'निषेधमूलक आंदोलन' कहा। 'अकविता' (Antipoetry) में कवियों ने परंपरागत मान्यताओं का खुला विरोध किया। अमेरिका में यह 'बीट जेनरेशन' (Beat generation) नाम से विख्यात

हुआ। 'बीट जनरेशन' के प्रवर्तक एलेन गिंसबर्ग (Allen Gins berg, 1926-1997) 1962-63 के आसपास भारत आये और बंगला के साहित्यकारों पर इसका बड़ा असर पड़ा। इससे निषेधमूलक कविता के रूप में 'भूखी पीढ़ी काव्यांदोलन' की शुरुआत हुई। हिन्दी में 'बीट जनरेशन' के प्रभाव से जो निषेधमूलक काव्यांदोलन शुरू हुआ, इसके प्रवर्तक जगदीश चतुर्वेदी के संपादकत्व में 'प्रारंभ' कविता संकलन सन् 1963 में प्रकाशित हुआ। इसमें अपनी कविताओं को उन्होंने 'अभिनव' शब्द का प्रयोग किया। सन् 1964 में 'अभिनव काव्य' को 'अकविता' (Anti Poetry) नाम स्वीकृत हुआ। सन् 1965 में श्याम परमार के संपादकत्व में 'अकविता' पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ तो 'अकविता' नाम अधिक प्रसिद्ध हुआ। जो कविताएँ परंपरागत मान्यताओं के निषेध की हैं, वे अकविताएँ हैं। जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी, गंगाप्रसाद विमल, मोना गुलाटी, मणिका मोहिनी, सौमित्र मोहन आदि अकविता आंदोलन से जुड़े कवि हैं। इसके निषेधमूलक स्वर को उदाहरण देखिए-

'देश एक लंगडाता वृद्ध मरीज
देशप्रेम एक ऐयाशी का दिया हुआ मोहमंत्र।'
(जगगीश चतुर्वेदी)

'समकालीन' अंग्रेज़ी के 'Contemporary' शब्द का समानांतर हिन्दी शब्द है। समसामयिक संदर्भों से जुड़ी हुई कविता है 'समकालीन कविता'। डॉ.विश्वंभरनाथ उपाध्याय 'समकालीन हिन्दी कविता' के प्रवर्तक माने जाते हैं। उपाध्यायजी की रचना 'समकालीन कविता की भूमिका' के प्रकाशन के साथ हिन्दी काव्य जगत में 'समकालीन कविता' नामक काव्यांदोलन का सूत्रपात हुआ। डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त के मत में सब साठोत्तर काव्यांदोलनों को एक मंच पर लाने के लिए उपाध्यायजी ने 'समकालनी कविता' शीर्षक दिया।

'समकालीन' शब्द समयानुसार बदलती मानसिकता को सूचित करता है। उपाध्यायजी के मत में 'समकालीन कविता' में 'जो हो रहा है' का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है। 'समकालीन कविता' के अंतर्गत निषेधमूलक कविताएँ और प्रगतिशील कवितएँ आती हैं। 'समकालीन कविता' के केन्द्र में विचार है, अत: यह 'जनवादी कविता' है। धूमिल, वेणुगोपाल, लीलाघर जुगूडी आदि इस धारा के कवि हैं। नयी कविता आंदोलन से जुड़े कुछ कवि समकालीन कविता में आते हैं, जैसे-अज्ञेय, रघुवीर सहाय, नरेन्द्र मोहन, सौमित्र मोहन आदि।

प्रसिद्ध समकालीन हिन्दी कवि धूमिल (सुदामा पांडेय) की कविताएँ भारतीय जनतंत्र की जन विरोधी प्रवृत्तियों के चित्रण के कारण लोकप्रिय बनीं। अपने कविता संकलन 'संसद से सड़क तक' के द्वारा धूमिल ने 'समकालीन कविता' की नींव डाली। वे मानते थे कि एक सही कविता पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है। वे अपनी कविताओं में कथ्य को महत्व देते थे। नये बिंब विधान तथा नये संदर्भों में जनता के संघर्षों का चित्रण उनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। आज़ादी और जनतंत्र पर व्यंग्य करते हुए धूमिल ने तत्कालीन भारतीय राजनीति का परिचय इन शब्दों में अपनी लंबी कविता 'पटकथा' में दिया है-

'मैं ने देखा हर तरफ
रंग बिरंगे झंड़े फहरा रहे हैं।
गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए
गुट से गुट टकरा रहे हैं।'

धूमिल का जन्म वारणासी (उत्तरप्रदेश) के पास खेली गाँव में 9 नवंबर 1936 को हुआ था। वे आम

आदमी की विवशता से परिचित थे। अत: सामाजिक-राजनीतिक बुराइयों के प्रति तीखे व्यंग्य कसते थे। उनकी देश प्रेम : मेरेलिए, मोचीराम, पटकथा, आज मैं लड़ रहा हूँ, रोटी और संसद, बारिश में भीगकर, दूसरे का घर, प्रवेश पत्र, शब्द जहाँ सक्रिय हैं, सापेक्ष्य संवेदन आदि कविताएँ प्रसिद्ध हैं।

'समकालनी कविता' में नारी, दलित और आदिवासी समाज की वर्तमान स्थितियों का चित्रण मिलता है। नारी की अस्मिता को केन्द्र में रखकर कई कविताएँ लिखी गयी हैं। स्त्री विमर्शवाली कविताओं में कुछ हैं-झर गयी बेला (देवेन्द्रकुमार 'बंगाली') भागी हुई लड़कियाँ (आलोक धन्वा), प्रेमिकाएँ (अखिलेश सिंह) दिन लौटेगी लड़की, यह लड़की जब उदास होगी (गगन गिल), क्या तुम जानते हो, अखबार बेचती लड़की (निर्मला पुतुल) आदि। उदयप्रकाश की कविता 'रात में हरमोणियम' में स्त्री की गुलामी का रूप देखिए-

'एक औरत नाक से बहता खून पोंछती हुई बोलती है
कसम खाती हूँ मेरे अतीत में कहीं नहीं था प्यार
वहाँ था एक पवित्र, शताब्दियों से लंबा
आग जैसा धधकता सन्नाटा।'

'दलित विमर्श' की हिन्दी कविताएँ दलितों की अस्मिता को केन्द्र में रखकर लिखी जाती हैं। इनमें दलितों के कष्टों, अनुभवों, संघर्षों आदि के स्वर मुखरित हैं। हिन्दी के प्रथम दलित कवि हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' सन् 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। प्रसिद्ध समकालीन दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सदियों का संताप' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद दिया है संघर्ष
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोंपडी से उठते घुए में
तनी मुष्टियाँ
तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास रचेंगी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'ठाकुर का कुआँ' कविता में दलितों की त्रासदी का चित्रण किया गया है-

'चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर की।।'

'दर्द के दस्तावेज़' (सुबवीर सिंह), 'मेरा गाँव' (सूरजपाल चौहान), 'आज़ाद हैं हम' (एन. आर. सागर), 'गूँगा नहीं था मैं' (जयप्रकाश कर्दम), 'उत्पीड़न की यात्रा' (लक्ष्मी नारायण 'सुधाकर) जैसी दलित कविताओं में आक्रोश और उत्पीड़न के स्वर सुनायी पड़ते हैं।

आदिवासियों की सामाजित स्थिति को आधार बनाकर कई समकालीन कवियों ने कविताएँ लिखी हैं, जैसे- रमणिका गुप्ता, निर्मल पुतुल, महुआ माजी, बजरंग तिवारी, हारीराम मीणा, महादेव टोप्पो, आइवी हांसदा आदि। आदिवासी स्त्री की आर्थिक स्थिति पर लिखी निर्मला पुतुल की पंक्तियाँ हैं-

"तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हज़ारों
पर हज़ारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट।"

'समकालीन कविता' स्वंतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय जनता के मोहभंग को दर्शाती है। घूमिल की पंक्तियाँ देखिए-

'मैं ने इंतज़ार किया
अब कोई बच्चा भूखा रहकर
स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत
बारिश में नहीं टपकेगी।'

अकाल, भुखमरी, बोरोज़गारी, धार्मिक संकीर्णता जैसी समकालीन समस्याओं पर लिखी कई हिन्दी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

हिन्दी क्षेत्र में ही नहीं, हिन्दीतर क्षेत्र में भी कई कवि ऐसे हैं, जो भोगे हुए यथार्थ पर कविता करते हैं। भारत के सुदूर दक्षिण में स्थित केरल में भी कई समकालीन कविता संकलन प्रकाशित हुए हैं। मैं इस संदर्भ में 'कथ्य और तथ्य', 'नदी को बहने दो', 'शब्द आदमी है' जैसे कविता संकलनों के, प्रणेता तथा केरल के बहुचर्चित समकलीन हिन्दी कवि डॉ.पी.वी.विजयनजी का नाम स्मरण करती हूँ, जो 21 जनवरी 2023 को स्वर्गस्थ हुए।

संपादक
डॉ.पी.लता
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी।

समय की विद्रूपताएँ और व्यक्ति-मन की बेचैनियाँ

◆ डॉ. शान्ती नायर

बेचैनी संवेदनशील मन की अस्मिता है। संवेदनशील रचनाकार मुक्तिबोध को अपने समतल दिखनेवाले समय के नीचे बहनेवाली जटिलता की अन्तर्धारा सदा दृष्टिगोचर होती रही । सम्भवतः इसी कारण बेचैनी से बचकर निकल पाना उनके लिए कभी भी सम्भव नहीं हो पाया। एक जटिल समय की तलछट से टकराकर लौटनेवाली प्रतिध्वनियाँ मुक्तिबोध की कहानियों में भी सुनाई देती हैं । मुक्तिबोध की ऐसी कहानियों का पाठ करते समय लेखक का समय और उसमें लेखक का हस्तक्षेप विशेष रूप से केन्द्र में आ जाते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस प्रकार की कहानियों में इतिहास दृष्टि ठीक उसी प्रकार मिलती है, जैसे शरीर में रक्त की धमनियाँ । यह इतिहास दृष्टि इस बात का भी प्रमाण है कि किसी न किसी समय में रचनाकार पूरी तरह से 'इन्वॉल्वड' रहा है। यह 'इन्वॉल्वमेंट' एक घटना या परिघटना विशेष तक सीमित होना या उससे बन्ध जाना नहीं है , वरन् जीवन के प्रासंगिक वास्तविक प्रश्नों-महाप्रश्नों के सही सन्दर्भ में , वर्तमान समय के साथ अभिमुख होना है । इस बात में कोई सन्देह नहीं कि रचनाकार के ऐन सामने उपस्थित समय अपने आगत और विगत से भी संलग्न होता है, क्यों कि कोई भी वर्तमान अपने अतीत और भविष्य से निरपेक्ष स्वायत्त नहीं होता। मुक्तिबोध की कहानियाँ भी इसीकारण आज के समय से जोड़कर पढ़ी जाने की सम्भावनाओं के साथ पाठक का ध्यान आकर्षित करती हैं ।

मुक्तिबोध के प्रौढ़ रचनात्मक दौर में लिखी गयी कहानियाँ हैं 'पक्षी और दीमक' तथा 'क्लॉड ईथरली'। ये कहानियाँ हमारे वर्तमान के महाप्रश्नों से मुखातिब होती दीख पड़ती हैं । भारत के स्वतन्त्र होने से अब तक जीवन को सम्मान से जीने का सपना शायद हर नागरिक ने हर काल में देखा । हर दशक में यह सपना टूटा। परन्तु वांछा इतनी बलवती रही कि भारतीय नागरिक इस सपने को पाने की दिशा में अग्रसर होता रहा। बावजूद इसके, एक समयान्तराल के बाद वह स्वयं हताश भी हो जाता है। 'पक्षी और दीमक'में आत्मविस्मृति के कारण पैदा हुए जिस संकट को प्रतीकात्मक ढंग से उभारा गया है, उसकी अर्थव्याप्ति वर्तमान भारत के लगभग हर क्षेत्र में दिखाई देती है। यहाँ पक्षी और दीमक की कहानी को भारत के सामाजिक राजनैतिक सच का पर्दाफ़ाश करने का माध्यम बनाया गया हैं। जो विद्रूपताएँ लेखक के मन को हमेशा व्यथित करती रहीं हैं, वे कहानी के कलेवर

में उभरती हैं । सामजिक विषमताओं के सरोकार को संवेदनशील पाठक तक मुक्तिबोध पक्षी और दीमक की कहानी के माध्यम से संप्रेषित करते हैं । नीले आस्मान की ऊँचाइयों पर पिता और मित्रों के साथ उड़नेवाला नौजवान पक्षी जब बैलगाड़ी में भरे दीमकों के बोरों और "दो दीमक ले लो एक पंख दे दो" की आवाज़ लगाते गाड़ीवाले को देखता है तो वह दीमक खाने के आकर्षण तथा उड़ान भरे बिना भोजन प्राप्त कर लेने के मोह को रोक नहीं पाता है। वह रोज़ एक पंख देकर दीमक लेने लगता है। पिता द्वारा ऐसा न करने के सन्दर्भ में दी गयी हिदायतों को वह हिकारत के साथ नज़रन्दाज़ कर देता है। उसे अब दीमक के अलावा दूसरे कीड़े ,फल ,अनाज के दाने आदि अच्छे नहीं लगते। पहले पक्षी मानता रहा कि आस्मान में उड़ना व्यर्थ है। धीरे-धीरे पक्षी आस्मान में उड़ने के काबिल न रह गया । परन्तु दीमक खाने का शौक बरकरार रहा । गाड़ीवाला अब आये दिन न आता, तो पक्षी बेहाल हो जाता। अनन्तर ज़मीन से चुनकर पक्षी जब दीमक गाड़ीवान को देना चाहता है और बदले में अपने पंख वापस लेना चाहता है तो गाड़ीवान ठठाकर हँस देता है और कहता है 'मैं दीमकों के बदले पंख लेता हूँ पंख के बदले दीमक नहीं।' अन्ततः उड़ पाने में असमर्थ पक्षी एक काली बिल्ली का शिकार बनता है।

पक्षी और उड़ान जहाँ स्वप्न स्वतन्त्रता और उन्नति से जुड़कर संकल्पना में आते हैं, वहीं दीमक किसी भी वस्तु को धीरे-धीरे भीतर से नष्ट कर देने वाले कारक के रूप में। कहानी के पक्षी की गहरी भूल आत्मविस्मृति की भूल है। पक्षी का पक्षी होना वस्तव में उसके उड़ पाने के करण है, जिसका आधार उसके पंख हैं । ये पंख दूसरों को दे देनेवाला पक्षी अब पक्षी नहीं रह जाता । कहानी प्रतीकात्मक रूप से सूचित करती है कि सुविधा का मोह और दीमक का आकर्षण जिस प्रकार धीरे-धीरे पक्षी को पंगु बनाकर उसका अन्त कर देते हैं, भारत के वर्तमान की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है।`

साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी शक्तियों की घुसपैठ तो भारत में औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही हो गयी थी और उसके बाद उसे कायम रखने की। यहाँ उपनिवेशन का शिकार बने देशों को तोड़ना-मरोड़ना या काटना-छाँट्ना उनके लिए आवश्यक हो गया थ। नवउपनिवेशी दौर में यह और अधिक पुष्ट होकर भूमण्डलीकरण के रूप में सामने आ रही है। देश का एक बहुत बड़ा हिस्सा उपभोक्ता संस्कृति और बाज़ार की चपेट में है। बाज़ार की पुष्टि के लिए उपभोक्ता संस्कृति रूपायित हुई। आज इसी उपभोक्ता संस्कृति के रुझानों के माध्यम से घुसपैठ कर आनेवाले साम्राज्यवाद के हाथ भारत की पूंजी, भारत की राजनीति ,प्रकृति और संस्कृति पर कब्जा कर बैठे हैं ।

पंख देकर दीमक खरीदनेवाले पक्षी के ही समान तीसरी दुनिया के देश भी खतरों के प्रति उदासीन होकर मुक्त अर्थव्यवस्था को स्वीकार करता चले गए। जाने-अनजाने औपनिवेशिक हित सुरक्षित होते जा रहे हैं। देश की अपनी परम्परा , इतिहास .सांस्कृतिक मूल्य ,पूंजी, प्रकृति सभी कुछ ठीक उसी प्रकार वर्चस्ववादी शक्तियों को सौंप दिए जाते रहे , जैसे पक्षी ने अपनी अस्मिता को भूलकर पंख गाड़ीवान को सौंप दिए।पक्षी को दीमक याने वह सुविधापरस्ती प्रदान की जाती है जो उसे आत्मनिर्भरता से वंचित करती है। सुविधापरस्ती अथवा आत्मसुख की ओर आकृष्टऔर अनन्तर उससे आविष्ट भारत का सामान्य जन भी जब अपने आत्म को विस्मृतकर देता है तो आत्मनिर्भरता से दूर चला जाता है। यहाँ उसे गुलाम बना लेना यास माप्त कर देना आसान हो जाता है । 'स्व' से होनेवाला यह अलगाव मनुष्य को दिग्भ्रमित करता है । इस कहानी में पक्षी को पिता समझाने की कोशिश करता है – "बेटे दीमक हमारा स्वाभाविक आहार नहीं है और उनके लिये अपने पंख तो हरगिज़ नहीं

दिए जा सकते ।" अपने देश की प्रकृति और संस्कृति से कटनेवाले नागरिक के लिए यह एक चेतावनी है कि अपनी अस्मिता को खोकर ऐसी किसी सभ्यता या विकास का वरण नहीं किया जाए जो हमारे लिए अनुकूल न हो,जो हमारे वर्तमान को क्षीण कर दे और भविष्य को मिटा दे । परन्तु इस प्रकार की चेतावनियों को ठीक उसी प्रकार अनदेखा अनसुना कर दिया गया, जैसे कहानी के नौजवान पक्षी ने बड़े गर्व से अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया।

पक्षी को दीमक खाने की लत लग गयी थी। 'अब उसे न दूसरे कीड़े अच्छे लगते, न फल, न अनाज के दाने। दीमकों का शौक अब उस पर हावी हो गया था।' सौन्दर्य,सभ्यता,कुशलता या उत्कृष्टता के द्वन्द्वात्मक समीकरण भारतीय जनमानस में भी इसी प्रकार रूपयित हो गये थे। भौतिक, राजनैतिक गुलामी से कई गुना खतरनाक था संकल्पनाओं का गुलाम होना। इस अवस्था में अपना सब कुछ खराब और उनका सब कुछ अच्छा लगता है। मनुष्य की संकल्पनाओं में घरकर जानेवाली यह गुलामी मानसिकता जीवन के हर क्षेत्र में अपना प्रभाव डालने लगती है।

पक्षी अपनी ऊँचाइयाँ छोड़कर नीचे उतर आता है। आत्मसुख के छद्म में फ़ँसा व्यक्ति भी सांस्कृतिक स्तर पर ऊँचाइयों को छोड़ देता है। वर्तमान समय केभ्रष्टाचार के साथ बुद्धिजीवियों में संघर्षशीलता के स्थान पर आ पहुँची समझौता-परस्ती की मानसिकता की ओर भी लेखक ने इशारा किया है।पंख यहाँ एक साथ नहीं नोचे जाते वरन् एक-एक कर ले लिए जाते हैं। स्मृति, स्वप्न, आदर्श ....सब एक-एक कर नष्ट होते जाते हैं । बहुत कुछ है जिसे भारतीय समाज दीमक की तरह अपने आत्म को नष्ट कर स्वीकार रहा है। विकास का ऐसा प्रारूप बनाया जाता है, जो कि साम्राज्यवादी देशों द्वारा वर्चस्व की स्थापना कर पाने के अनुकूल हो । प्रकृति का अन्धाधुंध दोहन होता है और हम विकास के नाम पर आश्वस्त रहते हैं । नये कॉरपोरेट, उडा रीकरण, निजीकरण ने इसी प्रकार के दीमक खिलाए। परंपरागत उद्योग, धंधे और खेती आदि का ध्वंस हो गया। कहानी में जिस प्रकार पंख देकर दीमक लिया जा सकता है परन्तु दीमक देकर पंख नहीं लिया जा सकता। तीसरी दुनिया के इन देशों की स्थिति भी ऐसीहै कि वे इस प्रकार ग्रसित हो चुके हैं कि पूर्व स्थिति में अब कभी वापस नहीं आ सकते। आधुनिकीकरण की संज्ञा देकर जिन योजनाओं को पेश किया गया, उनमें से अधिकांश देश की आत्मनिर्भरता को नष्ट करनेवाली रहीं। सब कुछ क्रमेण हुआ जैसे पक्षी पहले ऊँची लम्बी उड़ान भरने में असमर्थ होता है, फिर एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक उड़ता है...फिर फुदकता मात्र है, फिर काली बिल्ली का शिकार हो जाता है।

एक ओर बाहरी शक्तियाँ ताक लगाए बैठी हैं तो दूसरी ओर व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार है । कहानी में हम देखते हैं कि सरकारी योजनाओं को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया में भी भ्रष्टाचार का जटिल कुचक्र है। सरकारी अनुदान प्राप्त करने के लिए संस्थाओं और सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्ट तंत्र का मकड़जाल इस तरह उलझा हुआ है कि सुलझाना आज लगभग नामुमकिन सा हो गया है । सरकारी व्यवस्था का यह आलम है कि "माली साल की आखिरी तारीख को अब सिर्फ दो या तीन दिन बचे हैं। सरकारी ग्रांट अभी मंजूर नहीं हो पार ही है, कागज़ात अभी वित्त-विभाग में ही अटके पड़े हैं। ऑफिसों के बाहर,गलियारों के दूर किसी कोने में, पेशाबघर के पास या होटलों के कोनों में क्लर्कों की मुट्ठियाँ गरम की जा रही हैं ताकि ग्रांट मंजूर हो और जल्दी मिल जाए। (मुक्तिबोध रचनावली -तीन पृष्ठ-144) कहना न होगा कि देश की वर्तमान स्थिति इसी प्रकार की है या इससे भी बदतर है।

आत्मविस्मृति का ही एक हिस्सा यह भी है कि देश और देश की सम्पत्ति के सन्दर्भ में हम भूल जाते हैं कि ये हमारी बुनियाद हैं और इनके प्रति

हमारे कुछ कर्तव्य हैं। दीमक की तरह भ्रष्टाचार देश की व्यवस्था को खोखला कर रहा है। कहानी मे देखा जा सकता है कि किस प्रकार सरकारी कार्यालयों में सामान की खरीदारी में भी बीईमानी की जाती है। सरकारी वस्तुओं की खरीदारी में सामान खरीदा ही नहीं जाता, परन्तु समान के भुगतान बिल आदि की व्यवस्था कर दी जाती है। भौतिक जाँच- पड़ताल के अवसरों पर कुछ समय के लिए सामान को कहीं और से लाकर रख दिया जाता है। कहानी के एक प्रसंग में इस ओर संकेत किया गया है "सूक्ष्मदर्शी यंत्र ? सूक्ष्मदर्शी यंत्र कहाँ है ? है तो । ये हैं ।देखिए। क्लर्क कहता है। रजिस्टर बताता है । सब कहते हैं- हैं हैं । ये हैं। लेकिन कहाँ हैं ? यह तो सब लिखित रूप में हैं, वस्तु रूप में कहाँ हैं ! झूठी रसीद लिखने का कमीशन विक्रेता को, शेष रकम जेब में। सरकार से पूरी रकम वसूल।----- किसी खास जाँच के ऐन मौके पर किसी दूसरे शहर की ----संस्था से उधार लेकर, सूक्ष्मदर्शी यंत्र हाज़िर। सब चीजें मौजूद हैं। आइए अब देख जाइए। हाँ यह तो हैं सब सामने। लेकिन, जाँच खतम होने पर सब गायब, सब अंतर्धान। कैसा जादू है। खर्चे का आँकड़ा खूब फुलाकर रखिए सरकार के पास कागजात भेज दीजिए। खास मौकों पर ऑफिसों के धुंधले गलियारों और होटलों के कोनों में मुट्ठियाँ गरम कीजिए" (मुक्तिबोध रचनावली –तीन, पृष्ठ-145)

जो विद्रूपताएँ लेखक के मन को हमेशा व्यथित करती हैं, उनके केन्द्र में देश की राजनैतिक स्थितियाँ-परिस्थियाँ निश्चित रूप से हैं। देश के राजनैतिक गलियारों में भी आज ऐसी मौकापरस्ती है कि व्यक्ति पूर्णतया आत्मकेन्द्रित है। 'पक्षी और दीमक' कहानी में मैदान को समतल करने के खर्चे का संदर्भ आता है। श्यामला तर्क करती है कि यदि वास्तविक खर्च बारह हज़ार है, बीस हज़ार क्यों मान लिया जाए? 'मैं' को यह बात बैठक में स्पष्ट कर देनी चाहिए । परन्तु 'मैं' की सोच और स्थिति कुछ और है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है। अब मैं उसे उतना का क्या मतलब बताऊँ । साफ है कि उस भगवे खद्दर कुरतेवाले से मैं दुश्मनी मोल नहीं लेना चाहता। मैं उसके प्रति वफादार रहूँगा क्योंकि मैं उसका आदमी हूँ। व्यक्तिनिष्ठा भी कोई चीज़ है, उसके कारण ही मैं विश्वास योग्य माना गया हूँ। इसलिए मैं कई महत्वपूर्ण कमेटियों का सदस्य हूँ । (मुक्तिबोध रचनावली -तीन पृ-148) बागड़ोर सम्हालने के सन्दर्भ मे भी स्वतन्त्र ईमानदार सोच नहीं, वरन् गुटबन्दी प्रमुख हो चली है ।देश के, समाज के हित के लिए बनाई कमेटियों के सदस्य बनने की योग्यता यह हो चली है कि वह व्यक्ति किसी बड़े राजनेता का कृपा पात्र हो। और नामित होने के बाद सदस्य का सबसे बड़ा कर्तव्य नेता के प्रस्तावों के लिए हामी भरना होता है। उनके हर प्रकार के लाभ के लिए समर्पित रहना है। आज भी देश की राजनीति के गलियारों में यही संस्कृति पनप रही हैं। 'पक्षी और दीमक' का भगवे खद्दर कुरतेवाला भ्रष्ट राजनैतिक व्यवस्था के प्रतीक के रूप में आता है। कहानी के 'मैं' का अवसाद देश के उस शोकार्त व्यक्ति का अवसाद है जो आत्मकेन्द्रित-आत्मविस्मृत विद्रूपताओं के बीच अनचाही स्थितियों में जीता चला जा रहा है। अपने आपको वह इन स्थितियों के बीच विकृत अवस्था में पाता है। इसकी अभिव्यक्ति कहानी में इस प्रकार हुई है-"भगवे खद्दर कुरतेवाले की 'शवरलेट' जिसके ज़रा पीछे मैं खड़ा हूँ और देख रहा हूँ _यों ही _कार का नम्बर _कि इतने में उसके चिकने काले हिस्से में, जो आईने सा चमकदार है , मेरी सूरत दिखाई देती है । भयानक है वह सूरत। सारे अनुपात बिगड़ गए हैं। नाक डेढ़ गज लम्बी और कितनी मोटी हो गई है। चेहरा बेहद लंबा और सिकुड़ गया है, आंखें

खड्डेदार। कान नदारद ।मैं भूत जैसा अप्राकृतिक रूप। मैं अपने चेहरे की उस विद्रूपता को मुग्ध भाव से कुतुहल से और आश्चर्य से देख रहा हूँ। एकटक !" (मुक्तिबोध रचनावली –तीन, पृष्ठ-145) 'मैं' को लगता है कि यह आत्मालोचन, दुख और ग्लानि का गटर है। और सहसा उसके मुँह से हाय निकल पड़ती है और वह सोचता है उस भगवे खद्दर कुरतेवाले से मेरा छुटकारा कब होगा ! विकृति का यह बोध उसे मुक्ति की छटपटाहट से भर देता है।

यह छटपटाहट और बेचैनी मुक्तिबोध की रचनाओं को अपनी निजी पहचान देती है।अणुयुद्ध की भीषणता को और नृशंसता के अनन्तर दीख पड़नेवाली दयनीयता की अपरिहार्यता को उकेरती हुई कहानी ' क्लॉड ईथरली 'एक बड़े कैनवास पर सूक्ष्म रेखाओं के साथ फैलती है। पूंजीवादी व्यवस्था को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में कहानी देखती है, जिसमें साम्राज्यवाद भी सन्निहित है। अमेरिका कहानी में आद्यन्त बरकरार है तो उस देश के एक नागरिक क्लॉड ईथरली नामक पात्र को अक्स बनाकर पूरी कहानी चलती है। युद्ध और आधिपत्य की मनसिकता मनुष्य में जिस सोच को उत्पन्न करती है उसमें न तो मनवीय मूल्यों का स्थान है, न धर्मिक विश्वासों का, न भाईचारे का।

'क्लॉड ईथरली ' के कैनवास पर मुक्तिबोध तीन पात्रों को उतारते हैं, जिनमें दो पात्र कहानी के वर्तमान में सक्रिय दीख पड़ते हैं। परन्तु कहानी का केन्द्र पात्र क्लॉड ईथरली, जो इस कहनी के शीर्षक का भी हकदार है, उसकी भूमिका कहानी के वर्तमान में बहुत कम प्रतिशत ही है। उसकी उपस्थिति कहानी के वर्तमान में केवल इतनी है कि वह नसैनी पर चढ़कर इमारत के भीतर देखनेवाले कथावाचक 'मैं' को अकस्मात दिखाई दे जाता है- "छत के नीचे ढिलाई सेगोल गोल घूमते पंखे के नीचे, दो पीली स्फ़टिक सी तेज आँखें और लम्बी सिलवटों से भरा तंग मोतिया चेहरा जो कि ठीक उन्हीं रोशनदानों में से भीतर से बाहर पार जाने के लिए ही मानो अपनी दृष्टि केन्द्रित कर रहा है. आँखों से आँखें लड़ पड़ती हैं, ध्यान से एक दूसरे की ओर देखती हैं, स्थब्ध,एकाग्र. 'मैं' और जनाना जिस्मवाले आदमी के बीच के संवाद के माध्यम से कहानी अपना विस्तार करती है । इस संवाद का हेतु क्लॉड ईथरली है। जनाना जिस्मवाले आदमी से 'मैं' सर्वप्रथम यह जानना चहता है कि जिस इमारत में उसने क्लॉड ईथरली को देखा, वह इमारत कौन-- सी है । जनाना जिस्मवाले आदमी (जिसे सी.आई. डी. भी बताया गया है) की प्रतिक्रिया इस सन्दर्भ में यह होती है-"जानते नहीं हो, यह पागलखाना है, प्रसिद्ध पागलखाना।" उत्तर का अनुतान वैसा ही है, जैसे कोई आश्चर्य व्यक्त कर रहा हो कि 'तुम अमेरिका को नहीं जनते ?!'यहाँ विश्वप्रसिद्धि और मनमानी हरकतों का समीकरण पागलखाने से जुड़कर हो, न हो अमेरिका की ओर इशारा कर ही देता है।

धनी देशों की स्वार्थपरकता जब मनमानी की हदें पार कर जाती हैं, तो यह युद्धोन्मुखी मानसिकता को रूपायित कर मानवीय मूल्यों का ध्वंस करतीहै।यह मानसिकता जब संस्कृति पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लेती है तो एक अपरिभाषेय भय स्वतः ही रूपायित होने लगता है। यह 'भय' भय होते हुए भी सभ्य समाज का अलंकरण बनता है। इस भय के ही समान मनमानी ध्वंसप्रियता भी आसानी से त्यागी नहीं जा सकती। भीतर के निषेध के बावजूद व्यवहार में उसे स्वीकार करने के लिए व्यक्ति बाध्य होता चला जाता है। 'बाहरी एवं भीतरी दो कठिन पाटों बीच पिसने' की स्थिति से इतर नहीं है क्लॉड ईथरली की स्थिति। जिस पागलखाने में वह पहुँचा दिया गया है, उसकी ओर जानेवाला रास्ता बाहरवालों के

लिए फाशनबल ही है।

क्लॉड ईथरली के जीवन से जुड़े सत्य जनाना जिस्मवाले सी.आई.डी.के कथन से ही कहानी में आते हैं ।क्लॉड ईथरली वह अमेरिकी विमानचालक है जिसने हिरोशिमा पर बम गिराया था। ध्वंस का शिकार बने हिरोशिमा की स्थिति उसे विचलित कर देती है। उस आदिवासी रोमन कैथलिक ईसाई को पता नहीं था कि उसके हाथ में जो हथियार है उससे इतना बड़ा विनाश होगा। भयानक पाप कर जाने का बोध क्लॉड ईथरली के भीतर उभरकर बढ़ने लगता है और वह अपने आपको अपराधी के रूप में स्वीकारने लगता है। लेकिन अमेरिकी सरकार के लिये वह 'वार हीरो' है। सरकार उसे इनाम देती है। यहाँ दो स्थितियाँ हैं , जो परस्परआमने-सामने आकर ठहरती हैं। इन दोनों के बीच है एक आदमी या संवेदनशील नागरिक। एक ओर वह खुद के समक्ष ऐसा अपराधी है जिसने जघन्य अपराध किया है, क्रूरता और नृशंसता का ताण्डव रचा है। दूसरी ओर इसी नृशंसता को देशहित के रूप में घोषित किया जा रहा है। उसे 'ग्लोरिफ़ाई' किया जा रहा है। क्लॉड ईथरली सज़ा चाहता है। वह स्वयं इसके लिए कारण जुटाता है, परन्तु हर बार उसे जेल से इस कारण रिहा कर दिया जाता है कि उसे 'वार हीरो' का ख़िताब मिल चुका है। क्लॉड ईथरली ने मैनटूथ नामक गुण्डे के साथ डाकघर पर धावा बोला था, फ़िर डैल्लोस में कैशियर पर सशस्त्र आक्रमण किया था। मैनटूथ के साथ 'गुण्डा' शब्द विशेषण के रूप में जुड़ सकता है, परन्तु क्लॉड ईथरली के साथ कतई नहीं। वह प्रख्यात युद्धवीर है क्यों कि उसने जो जघन्य कार्य किया है उसके साथ देशहित का लेबल लगा है।

कहानी में जनाना आदमी से क्लॉड ईथरली का विवरण सुनते-सुनते कथावाचक महसूस करता है –"मैं सचमुच इस दुनिया में नहीं रह रहा हूँ, उससे कोई दो सौ मील ऊपर आ गया हूँ, जहाँ से आकाश, चाँद, तारे, सूरज सभी दिखाई देते हैं । रॉकेट उड़ रहे हैं, आते हैं, जाते हैं और पृथ्वी एक चौड़े नीले गोल जगत सी दिखाई दे रही है, जहाँ हम किसी एक देश के नहीं, सभी देशों के हैं।" यहाँ एक ऐसा अहसास ध्वनित होता है कि हम किसी एक देश के नहीं वरन वृहद विश्व के नागरिक हैं।

आगे विश्व नागरिक की संवेदना भी कहानी में उतरती है और संप्रेषित होती है। साम्राज्यवादी पूंजीवादी देशों और गरीब अविकसित या विकासशील देशों का समीकरण जहाँ एक ओर पूर्णतया द्वंद्वात्मक रूप में उभरता है, वहीं समीकरण के दोनों पक्ष इतने गुँथे हुए भी हो जाते हैं कि अन्तर अस्पष्ट लगने लगता है। यह स्थिति सांस्कृतिक क्षेत्र में अधिक उभरकर आ रही है। सांस्कृतिक स्तर पर यह हस्तक्षेप वस्तुतः इतने महीन ढंग से फैलकर घर करता है कि घुसपैठ प्रायः पहचानी ही नहीं जाती। कहानी का 'मैं' चकित है कि अमेरिका का क्लॉड ईथरली ,जिसने हिरोशिमा पर बम बरसाया वह भारत के पागलखाने में कैसे है? यथार्थ और भ्रम के बीच 'भयावह और सन्दिग्ध' ऐसी ही स्थिति हर आम नागरिक की है. कथावाचक 'मैं' प्रश्न करता है- "तो क्या यह हिन्दुस्तान नहीं है? हम अमेरिका में ही रह रहे हैं?"

संस्कृतियों के संबन्ध जब बनते हैं तो तीन प्रकार की सम्भावनाएँ होती हैं – पहली वह, जिसमें सत्ता की निकटवर्ती संस्कृति दूसरी को जड़ से उखाड़कर फेंक देती है। दूसरी स्थिति में वह संस्कृति दूसरी को अपनाती है औरअपनाकर उस पर कब्ज़ा कर लेती है। तीसरी संभावना प्रभुता की है, जिसमें वह दूसरी संस्कृति पर थोप दी जाती है। यहाँ हमें दूसरी संस्कृति का ज़िन्दा बचे रहने का अहसास करा सकता है,परन्तु नकारत्मकता का पक्ष प्रथम दो प्रक्रियाओं के समान प्रभुता में भी विद्यमान होता है। 'मैं ' के प्रश्न के उत्तर में जनना जिस्मवाले आदमी

का जवाब सांस्कृतिक स्तर पर उभरकर फैलनेवाली इन्हीं स्थितियों की ओर सशक्त रूप से संकेत करता है- "भारत के हर बड़े नगर में एक एक अमेरिका है"।

यह अमेरिका संकल्पना में उतर जानेवाला सांस्कृतिक प्रदूषण है जिससे भारत का हर नागरिक अधिक या आंशिक रूप से प्रभावित हो चुका है। यहाँ सब कुछ इतना गुँथा हुआ है कि अलग अलग पहचानना तक सम्भव नहीं हो पाता। भीमाकार पत्थरों की विक्टोरियन बिल्डिंगों की पृष्ठभूमिवाले फाशनबल रास्ते पर भी पान की दूकान है। पान जहाँ भारतीय जीवन की ठेठ संस्कृति से जुड़ता है वहीं उस दूकान की दीवरों पर विलायती नंगी औरतों की तसवीरें भी हैं , जिनके बारे में कहा गया है कि वे दूकान की शौकत बढ़ा रही हैं। इन तसवीरों की संस्कृति यहाँ पान के साथ भारतीय रंग में उतरकर उसे नया 'शेड' दे देती है। भले हीपान के समान उसे सिर्फ़ चबाया ही जाता हो, गले के नीचे न उतारा जाताहो,परन्तु इसका नशा चढ़ने से नहीं चूकता।

इस प्रदूषित वातावरण में तीसरी दुनिया के नागरिक को अपना चेहरा बदसूरत लगता है। अच्छे और बुरे की संकल्पनाएँ भी उसके दिमाग में किसी और की दी हुई होती हैं। कहनी में हम देखते हैं कि पान की दूकान में जो आईना लगा है उसके पीछे लगे मसाले में दोष है। इसी कारण अपना चेहरा बिगड़ा ही दीख पड़ता है। औसत आम आदमी अपनी संस्कृति और आयातीत संस्कृति के बीच सही-गलत, सुन्दर-असुन्दर, उचित-अनुचित का फैसला कर पाने में असमर्थ, अगम्भीर जीवन जीने की दशा में है। कहानी में एक सन्दर्भ आता है, जबकि दो पात्र आईने में अपने चेहरों को देखते हैं - "हम दोनों ने अपने-अपने चेहरे और एक दूसरे के चेहरे देखे।दोनों खराब नज़र आए। दोनों रूप बदलने लगे। दोनों हँस पड़े। यही मज़ाक चलता रहा।"

भारत की संस्कृति में आ पहुँचे प्रदूषण के कुछ बाहरी दृश्यों की ओर कहानी पहले स्पष्ट इशारा करती है –"तुमने लाल ओंठवाली चमकदार गोरी सुनहली औरतें नहीं देखीं,उनके कीमती कपड़े नहीं देखे, शानदार मोटरों में घूमनेवाले अशिक्षित लोग नहीं देखे ,नफ़ीस किस्म की वेश्यावृत्ति नहीं देखी?" ये ऐसे दृश्य हैं जो आम तौर पर आयातीत संस्कृति के प्रदूषण के रूप में आलोचना और हिकारत का विषय बनते हैं ।परन्तु कहानीकार ने इससे आगे इसी के साथ जोड़कर जो वाक्य लिखे हैं उनके माध्यम से तीखे व्यंग्य को उजागर किया है- "सेमिनार नहीं देखे ? एक ज़माने में हम लन्दन जाते थे, इंग्लैन्ड रिटेर्णड कहलाते थे औ रआज वाशिंगटन जाते हैं "स्पष्ट है कि कॉलनाइज़ेशन हमारी संकल्पना में वैसे ही शेष रह गया जैसे वर्षों से लगे किसी मैल को पोंछ देने पर भी उसका दाग बरकरार रहता है। साम्राज्यवाद और वर्चस्ववाद की, आयातीत संस्कृति की आलोचना करते हुए भी अमेरिका पहुँचने या अमेरिका जैसा बनने का सपना पालनेवालों की स्थिति को भी नफ़ीस किस्म की वेश्यावृत्ति की शृंखला में रखता कहानीकार यहाँ विड़म्बना को तीखे व्यंग्य के साथ व्यक्त करता है- "हमारा बस चले तो हम सचमुच उतने ही धनी हों और हमारे पास उतने ही एटम बम हों, हाइड्रोज़न बम हों और रॉकेट हों तो फिर पूछना क्या !" अर्थात् असमर्थता की स्थिति में जिस चमक-दमक और वर्चस्व की निन्दा की जाती है समर्थता में (यानेअवसर मिलने पर) वे सब पूरी हवस के साथ अपना ली जाती हैं,यहाँ तक कि हिंसा के तमाम तरीके और उपकरण भी।

कहानी का 'मैं' अपने ईमानदार होने की तमाम दलीलें पेश करता है, बावजूद इन दलीलों के

वह स्वीकारता है –"अलबत्ता कर्ज़ मुझ पर ज़रूर है जो कि मैं चुका नहीं पाता।" वर्तमान स्थिति ऐसी ही दीख पड़ती है कि घोषित ईमानदारी के पीछे एक बेईमानी भी होती है जिसे भद्र रूप से छिपा लिया जाता है। कहानी का 'मैं' स्वयं मानता है कि नसैनी पर चढ़कर रोशनदान से उसका क्लॉड ईथरली को देखना स्वतः बेईमानी ही है। वह इस बात से डरता भी है कि कहीं सन्दिग्ध अवस्था में वह पकड़ा न जाए। कथावाचक 'मैं' का यह देखना और सोचना ठीक वैसा ही है जैसे कि भारतीय भद्र वर्ग आज अमेरिका को देखता और सोचता है।कहानी आगे संकेत देती है कि "आजकल के लेखक और कवि अमरीकी ब्रिटिश तथा पश्चिमी योरोपीय साहित्य में गोता लगाते हैं और वहाँ से अपनी आत्मा को शिक्षा और संस्कृति प्रदान करते हैं ।आगे मुक्तिबोध जनाना आदमी से यह भी कहलाते हैं कि हमारे तथाकथित राष्ट्रीय अखबार और प्रकाशन केन्द्र अपनी विचारधारा औरदृष्टिकोण अमेरिका से ही लेते हैं। स्पष्ट है कि कोई भी समाज इससे मुक्त नहीं। इसप्रकार देखा जाए तो कहानी का वाक्य 'भारत के हर बड़े नगर मे एक एक अमेरिका है।' का अर्थ फैलकर और अधिक विस्तार पाता है, साथ ही सूक्ष्मता के साथ दृष्टिगोचर भी होने लगता है।

कहानी का जनाना आदमी अपना परिचय देता है- "मै एक करोड़पति सेठ का लड़का हूँ। उनके घर में जो काम करनेवालियाँ हुआ करती थीं, उनमें से एक मेरी माँ है,जो अभी भी वहीं है। मैं घर से दूर पाला-पोसा गया, मेरे पिता के खर्च से। माँ मिलने आती। उसी के कहने पर मैने बेमुश्किल तमाम मैट्रिक किया, फिर किसी सिफ़ारिश से सी.आई.डी की ट्रेनिंग मे चला गया । तब से यहीं काम कर रहा हूँ। बाद में पता चला कि वहाँ का खर्च भी वही सेठ देता है। उसका हाथ मुझ पर अभी तक है।" कहानी में यह कथन मात्र एक परिचय नहीं है । वरन् एक रूपक के रूप में उभरता है। पूंजीपतियों की वर्चस्ववादी शक्ति के अधीन हैं तमाम अविकसित या विकसशील देश। इन देशों की संस्कृति में अमेरिकी संस्कृति का प्रवेश ठीक उसी प्रकार होता है, जैसे काम करनेवालियों के भीतर करोड़पति का अवैध गर्भ। अनन्तर पिता के खर्च पर निर्भर नाजायज बेटे की स्थिति से भिन्न नहीं होता इन देशों का भविष्य। देश की संस्कृति,विरासत, अस्मिता सभी कुछ ठीक वैसे ही है जैसे मिलने को कभी आ पहुँचनेवाली माँ। जनाना आदमी का सी.आई.डी. बनना करोड़पति की इच्छा और अहसान तले है। ठीक उसी प्रकार तीसरी दुनिया के देश के नागरिक की आत्मनिर्भरता और अस्मिता भी मात्र भ्रम है। पूँजीवाद का वर्चस्व करोड़पति पिता के हाथ की तरह ही हमेशा बरकरार रहता है। सी आई.डी. वर्तमान भारत का नागरिक है- मर्द है, पर जिस्म से जनाना। पर इस जनानेपन में एक ईश्वरीय अर्थ की दमक पैदा कर रहा है और आत्मा की आवाज़ को दबाता मालूम होता है। विवेक चेतना को अटाले में डाल देता है।

कहानीकार तमाम विचारों को इसी पात्र के माध्यम से पाठक के सामने रखता है। जैसे- "जो आदमी आत्मा की आवाज़ कभी-कभी सुन लिया करता है और उसे बयान करके छुट्टी पा लेता है वह लेखक हो जाता है। आत्मा की आवाज़ जो लगातार सुनता है और कहता कुछ नहीं है वह भोला भाला, सीधा सादा बेवकूफ़ है। जो उसकी आवाज़ बहुत ज़्यादा सुनता है और वैसा करने लगता है वह समाज विरोधी तत्वों में यों ही शामिल हो जाया करता है। लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज़ ज़रूरत से ज़्यादा सुन करके उस बेचैनी में भीतर के हुकुम का पालन करता है वह निहायत पागल है।" यहाँ क्लॉड ईथरली के सन्दर्भ में कहा गया 'पागल' शब्द अर्थव्याप्ति पाता हुआ कहानी में फैल जाता है और क्लॉड ईथरली भी अर्थ का विस्तार करता हुआ वर्तमान जीवन के विविध क्षेत्रों में मौजूद विविध 'क्लॉड ईथरलियों' में बदल जाता है।

कहानी में कहा गया है कि पुराने ज़माने में लीक से हटकर सोचनेवाले सन्तों को व्यवस्था ने पागल करार दिया। "आज भी बहुतों को पागल कहा जाता है। अगर वे बहुत तुच्छ हुए तो सिर्फ़ उनकी उपेक्षा की जाती है। जिससे कि उनकी बात प्रकट न और फैल न जाए"। यह व्यवस्था का अपना तरीका है जिसे वह वर्चस्ववादी रवैय्ये के तहत अपनाती है। यहाँ कहानी का सत्य अमेरिका, हिरोशिमा, क्लॉड ईथरली से आगे जीवन के तमाम सूक्ष्म स्तरों में व्याप्त होता दिखाई पड़ने लगता है। जैसे कहानी कहती है कि ' भारत के हर बड़े शहर में एक एक अमेरिका है' वैसे ही विविध सन्दर्भों में व्यक्ति ऐसे कार्य करने को बाध्य होता है, जिसे उसकी अन्तरात्मा नकारती है। विड़म्बना यह कि व्यक्ति इन्हीं कार्यों के लिए ग्लोरिफ़ाई भी किया जाता है। ऐसी अवस्थाओं में पहुँचनेवाले हरेक संवेदनशील व्यक्ति के मन-मस्तिष्क और हृदय में क्लॉड ईथरली के मन-मस्तिष्क और हृदय का ही अनुकंपन है।

विकल्पों की ओर इशारा करती हुई कहानी कहती है कि "हमारे मन, हृदय, मस्तिष्क में ऐसा ही एक पागलखाना है जहाँ हम उन उच्च पवित्र विद्रोही भावों को फेंक देते हैं जिससे कि धीरे-धीरे या तो वे खुद बदलकर समझौतावादी पोशाक पहन सभ्य भद्र हो जाएँ। यानी दुरुस्त हो जाएँ या उसी पागलखाने में पड़े रहें"। कहानी इस सत्य को इन्हीं सन्दर्भों में हमारे सामने रखती है कि "क्लॉडईथरली हमारे यहाँ भले ही देह रूप में न रहे, लेकिन आत्मा की वैसी बेचैनी रखनेवाले लोग तो यहाँ रह ही सकते हैं"। सहमति और सामर्थ्य का चमकीला लेबल चिपकाकर दबा दी जानेवाली असहमतियाँ जहाँ इतिहास में मौजूद हैं वहीं उनकी निरन्तरता को आज भी हम वर्तमान में कायम देख रहे हैं। इस बात में संदेह नहीं कि संवेदनशील व्यक्ति इन स्थियों से त्रस्त भी है- 'व्यापक अन्याय करनेवाले किन्तु उसका विरोध न करनेवाले लोगों के अन्तः करण में व्यक्तिगत पाप भावना रहती है, रहनी चाहिए। क्लॉड ईथरली और उनमें यह बुनियादी एकता और अभेद है।' यह दुनिया के किसी भी देश के किसी भी संवेदनशील नागरिक की संवेदना है।इन कहानियों में जो बेचैनी है ,वह उस व्यक्ति मन की अस्मिता की गवाह है जो संवेदनशील रचनाकार में अन्त तक बरकरार रही। वह विश्व भर के वर्चस्व के इतिहास में हमें फैली हुई नज़र आती है।

आधार ग्रंथ : मुक्तिबोध रचनावाली, संपादक – नेमीचन्द्र जैन; राजकमल प्रकाशन, वर्ष-1980.

◆ प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,
श्री शन्कराचार्य विश्वविद्यालय ,
कालडी-683574, केरल।
फोन:09447291549

आधुनिक जीवनबोध के परिप्रेक्ष्य में निर्मल वर्मा के कथा साहित्य का अध्ययन

◆ डॉ.वीणा जे

साठोत्तर हिंदी साहित्य के सलामी लेखक एवं 'ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता' निर्मल वर्मा हिन्दी कथा साहित्य के कुशल चितेरा हैं, जिन्होंने हिन्दी कथा साहित्य की विकास यात्रा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । उनके कथा साहित्य का मुख्य आकर्षण 'आधुनिकता' ही रहा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत के हर क्षेत्र में व्याप्त आधुनिकता को निर्मल जी ने अपने रचना जगत में लाने का भरसक प्रयास किया, और आधुनिक भारतीय संस्कृति के स्तुति पाठक के रूप में अपनी तूलिका को आगे चलाया। निर्मल जी ने पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति को भी सरलता से अपनी रचनाओं में अंकित किया। दुनिया के अनेक देशों की यात्राओं ने उनकी रचनाओं को अधिक संवेदनशील बना दिया। निर्मल जी का जन्म शिमला (हिमाचल प्रदेश) के प्रकृति रमणीय पहाड़ी प्रदेश में हुआ था। अपने जन्म स्थान के प्रकृति सौन्दर्य ने उनकी रचनाधर्मिता को परिपुष्ट किया । अपने विद्यार्थी जीवन के समय में उन्होंने कुछ कहानियाँ लिखीं, किन्तु वे प्रकाशित नहीं हो पायीं।

उनकी वास्तविक साहित्य यात्रा 1952-53 के समय कहानीकार के रूप में शुरू हुई थी । 'कहानी' नामक पत्रिका में अपनी पहली कहानी को प्रकाशित कर उन्होंने अपनी साहित्य सपर्या का श्रीगणेश किया। उनका पहला कहानी संग्रह 'परिन्दे' सन् 1960 में प्रकाशित हुआ, जिनके बारे में 'डॉ.नामवर सिंह' का कथन इस प्रकार है –"परिन्दे सिर्फ निर्मल वर्मा की ही पहली कृति नहीं है ,बल्कि जिसे हम नयी कहानी कहते हैं, उसकी भी पहली कृति है"।[1] 'परिन्दे' के प्रकाशन के बाद उनके करीब आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए ,जिनमें से 'पिछली गर्मियों में', 'जलती झाड़ी', 'बीच बहस में', 'कौवे और काला पानी' 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि मुख्य हैं। अपनी साहित्य सपर्या की खूबी और शिक्षा के क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण योगदान केलिए भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित किया ।

हिन्दी उपन्यास क्षेत्र को भी निर्मल वर्मा ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं से आलोकित किया। सन् 1964 में 'वे दिन' नामक उपन्यास लिखकर उन्होंने उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में भी अपना पदार्पण किया । इसके बाद 'लालटीन की छत', 'एक चिथड़ा हुआ सुख', 'रात का रिपोर्टर' आदि उपन्यास भी उन्होंने लिखे । उनका अंतिम उपन्यास है 'अंतिम आरण्य'। उनका रचना वैभव केवल कथा साहित्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने नाटक, जीवनी, निबंध, यात्रावृत्तांत, अनुवाद आदि गद्य साहित्य की अन्य विधाओं को भी अपनी तूलिका से समृद्ध किया। रचनाकार के अलावा वे एक उत्कृष्ट चिन्तक, पत्रकार एवं विचारक भी रहे।

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में आधुनिकता की स्पष्ट झलक लक्षित है, साथ ही साथ उसमें पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भी अधिक मात्रा में जुड़ा है । इसका एक कारण यह हो सकता है कि बचपन से ही यूरोपीय साहित्य के प्रति उनकी रुची रही थी ,और दूसरा यह हो सकता है कि पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति स्वातन्त्रयोत्तर जन जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं । यायावर व्यक्ति होने के कारण विभिन्न देशों की संस्कृतियों से उनका गहरा संबन्ध रहा । उनकी रचनाओं में इन संस्कृतियों का प्रभाव होना स्वाभाविक है । अपने जीवनानुभव की सच्ची अनुभूतियाँ ही उनके कथा साहित्य को अन्य रचनाकारों से अलग रखती हैं । अपनी रचनाओं के बारे में उनका कथन है –"जहाँ

तक मेरा प्रश्न है, मुझे यह लगता है कि अब तक मैं जो लिखता आ रहा हूँ उसमें मेरा आत्मजीवन ही सबसे अधिक रूपांतरित होकर आता रहा है । मेरी कथा संपदा का स्रोत मेरे अब तक गुज़र चुके जीवन का अनुभव ही तो है"।[2]

निर्मल वर्मा वास्तव में प्रगतिशील लेखक हैं, जिन्होंने आधुनिक मनुष्य को आधुनिकता की दृष्टि से देखा -परखा और अपने कथा साहित्य में आधुनिक समाज को और उस समाज में व्याप्त आधुनिकता को वाणी देने का प्रयास किया । आधुनिकता के बारे में 'माँस का दरिया' की भूमिका में उन्होंने इस प्रकार लिखा –"आधुनिकता सिर्फ खाली शब्द नहीं ,आस पास की हर चीज़ को इस अंदाज़ से देखने और पहचानने की क्रिया है जो हम से पहले किसी पीढ़ी के पास नहीं थी"।[3] आधुनिकता के प्रेमी होने के नाते उनके कथा साहित्य में आधुनिक शहरी जीवन की विलासिता है, शराब एवं खुले सेक्स, विपर्यय पात्र, विवाह संस्कार के स्थान पर 'सहजीवन', टूटते रिश्ते, नशा, भावुकता आदि आधुनिकता के अनेक चिह्न विद्यमान हैं ।

'वीकेन्ड' नामक कहानी में निर्मल वर्मा जी ने विवाह संस्कार का निषेध किया है। शादी-शुदा नायक अविवाहित नायिका के साथ वीकेन्ड मनाने दूसरे शहर जाता है।| नायक अपने दाम्पत्य को बंधन मानकर उससे मुक्त होना चाहता है और नायिका से कहता है –"कितना आसान है, तुम कहीं भी जा सकती हो | मेरे लिए सब खुला है । मेरे लिए कोई बंधन नहीं है, जैसे उसके है । एक छोड़ी हुई पत्नी,एक बंधी हुई पत्नी, एक बंधी हुई बच्ची, बीच में 'मैं'-खाली जगह को भरती हुई हवा की तरह, जो हर सूने कोने में बसेर कर लेती है ,परन्तु यह मेरा वीकेन्ड है ,इसे मुझसे कोई छीन नहीं सकता'।[4] प्रस्तुत पंक्तियों से रचनाकार का समस्त अभिप्राय स्पष्ट है। इसमें विवाह संस्कार का खुलकर निषेध है और सहजीवन का स्वीकार भी।

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में आधुनिक पारिवारिक जीवन में व्याप्त घुटन, टूटन, कुंठा, निराशा, बेरोज़गारी,विश्वास आदि अनेक समस्याएँ परिलक्षित होती हैं। 'संयुक्त परिवार' संकल्प आज नहीं के बराबर है,जिसके स्थान पर अणु परिवार व्यवस्था है और वह भी टूटती नज़र आती है। पारिवारिक सुरक्षा केलिए बाध्य कामकाजी दम्पति समझौते केलिए तैयार नहीं । पति-पत्नी अपनी बनी-बनाई दुनिया में स्वच्छन्द विचरण करते हैं, और संतानों के भविष्य के बारे में सोचते तक नहीं। बदलते समय पति- पत्नी के संबन्धों में एक अजीब सा परिवर्तन आ गया है । 'एक दिन का मेहमान' कहानी इसका उत्तम नमूना है, जिसमें पति हिन्दुस्तान में और पत्नी इंग्लैड में है । तेरह वर्षीय बेटी पत्नी के साथ इंग्लैंड में रहती है । पति मेहमान के समान जब कभी इंग्लैंड जाता है , तो घर की स्थिति विकट हो जाती है । वह बेटी घबराती है और अपने पिता को होटल में भेजने का इंतज़ाम करती हुई कहती है –"यह होटल का नाम है ,टैक्सी तुम्हें सिर्फ दस मिनेट में पहुँचा देगी"।[5] अपने स्वार्थ एवं सुविधा के कारण जब दाम्पत्य जीवन टूटता है , तो बीच में पड़ी संतानों की दुरवस्था का सीधा-सच्चा दस्तावेज है, यह कहानी ।

बेरोज़गारी आधुनिक जीवन की ज्वलन्त समस्या है , जिसका जीवन्त चित्रण निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में द्रष्टव्य है । अधिकांश पारिवारिक समस्याएँ बेरोज़गारी से उत्पन्न हैं। आधुनिक ज़िन्दगी जीने केलिए संपत्ति मूल्यों से बढ़कर अनिवार्य बन गयी है । इसलिए धनार्जन की राह में निर्मल वर्मा जी के पात्र भटकते रहते हैं । 'सितंबर की एक शाम' कहानी का नायक बेकार है । इसी निराशा में घरबार छोड़कर रोज़गार की तलाश में शहर में रहने लगता है। इसकी बेरोज़गारी से परिवारवाले तंग आ गए हैं । बहन इसे अपने गाँव भेजने की चिन्ता में है। बेरोज़गारी भाई-बहन केलिए भी बाध्य बन जाती है । गाँव वापस जाने को इनकार करते हुए नायक अपनी बहन से कहती है – "तुम बहुत बड़े बन गए हो । छिः तुम्हें शरम नहीं आती । अपनी तरफ देखो, सड़कों पर एड़ियाँ घिसने से तुम में बड़प्पन आ गया है ?आया होगा,मुझे तो दिखता नहीं"।[6] बेरोज़गार भाई से

छुटकारा पाने केलिए बहन उसे गाँव जाने केलिए रुपये देती है, और वह युवक उस रुपये से एक युवती के साथ रात गुज़रने चलता है और ज़िन्दगी में पहली बार सार्थकता महसूस करता है । इसमें नायक बेकारी से उत्पन्न संत्रास एवं शून्यताबोध भोग रहा है। बेकार व्यक्ति परिवारवालों केलिए बोझ है। यही परम सत्य है, जिसका उद्घाटन इस कहानी में हुआ है ।

आधुनिकता के जाल में फँसकर भयग्रस्त नारी का चित्रण निर्मल वर्मा के कथा साहित्य की और एक विशेषता है । 'लालटीन की छत' उपन्यास की नायिका 'काया' भयग्रस्त है । परिवार में अनेक सदस्यों के होने के बावजूद वह अपने को अकेली , असुरक्षित महसूस करती है । उसकी माँ में इतना भय उमड़ पड़ा कि वह अपने ही घर में शरणार्थी की तरह हो जाती है। " जैसे वह कोई बाहर की लड़की है ,वह घर में शरणार्थी की तरह महसूस करती रहती है"।[7] 'काया' आधुनिक भयग्रस्त नारियों की प्रतिनिधि है । इसके अलावा 'माया दर्पण' कहानी की नायिका 'तरना','दहलीज़'कहानी की नायिका ,'अंतर' कहानी की नायिका आदि आधुनिक नारियाँ भयभीत हैं। वे या तो अपने से,साथियों से, मालिक से या नियति से भयग्रस्त हैं।

आधुनिक जीवन में शराब तथा सेक्स पहले से अधिक अनिवार्य बन गए हैं। फैशन के नाम पर स्त्रियों ने अपने शरीर-प्रदर्शन को आवश्यक समझ रखा हैं और स्त्री-पुरुष खुले सेक्स को प्रोत्साहन देते हैं। वे भारतीय संस्कृति को अधिक उपयुक्त समझते हैं । 'दो घर' कहानी में 'आतिथ्य' सत्कार शराब के द्वारा ही करता है । "आप कुछ पियेंगे? वे अपने साथ दो गिलास और एक बोतल लाई थीं ,सोडा नहीं है, आप पानी के साथ पी लेते है"।[8] 'खोज', 'पिक्चर पोस्ट कार्ड', 'अंतर', 'लंदन की एक रात' आदि कहानियों में भी आधुनिक जीवन में सेक्स एवं शराब की अनिवार्यता को वाणी मिली है ।

आधुनिक जीवन का और एक शाप है 'काम वासना' का आधिक्य। आधुनिकता से ओत-प्रोत निर्मल जी की कहानियों में स्त्री-पुरुष बंधनमुक्त जीवन जीना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में सेक्स एवं शराब ज़िन्दगी के अभिन्न अंग हैं । वे स्वतन्त्र होकर वासना की गलतियों में भटकते रहते हैं। पशु-पक्षियों के समान वे स्वच्छन्द काम संबन्ध चाहते हैं। 'पिक्चर पोस्टकार्ड' का नायक अपने मित्रों से कहता है –"मैं ने नोऊ को देखा ,और मेरी आँखें नीचे उतर आयीं। मैं ने उसकी कॉलर-बोन के पास एक छोटे से 'गढे' को देखा| उसके ऊपर बिले भर का गढ़ा था। मेरी आँखें उस गाढे में टिक गयीं। मैं ने कई सोचा कि किसी दिन मैं कॉलर बोन के उस गढ़े को अपनी जुबान की नोक से स्पर्श करूँगी'।[9] बदलती संस्कृति में शराब पीकर सेक्स की चर्चा करना लोगों की आदत सी बन गई है । पुराने ज़माने में सेक्स की खुली चर्चा पाप समझी जाती थी, और वे उस पर चर्चा न करके चोरी-चुपके सेक्स का आस्वादन करते थे । आज की दुनिया में लोग सेक्स को खुले तौर पर करना चाहते हैं , जैसे आदिम लोग करते थे ।

निर्मल वर्मा आधुनिक संस्कृति एवं आधुनिक जीवन से प्रभावित हैं। इसलिए उनकी कहानियों में पाश्चात्य संस्कृति का खुला वर्णन द्रष्टव्य है। उनकी कहानियों के पात्र पाश्चात्य संस्कृति से आकृष्ट होकर परिवार को अनैतिक चर्चा के केन्द्र बनाते हैं । अधनंगा वेश-भूषा, शराब , मुक्त भोग , उत्तेजक संगति आदि को वे नैतिक मानकर उनकी ओर आकृष्ट होते हैं । इस तरह परिवार के पुराने संकल्प को बिलकुल बदल देते हैं । 'दो घर' टूटे परिवार की कहानी है । इसमें विदेश में जीवित एक भारतीय की कथा कही गई है । इसका नायक शादी शुदा है, लेकिन संदर्भवश अस्पताल में उसकी शुश्रूषा करनेवाली नर्स से संबंध स्थापित करता है । इस तरह उसे दो घर चलाना पड़ता है । आज इस तरह का विवाहेतर संबंध एवं दो घर हमारे देश में व्यापक हैं, जिसका पर्दाफाश करना ही लेखक का लक्ष रहा।

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में 'पश्चिमी

सभ्यता' का सीधा-सच्चा वर्णन उपलब्ध है । अपने कथा साहित्य को रूमानिय और आधुनिक सभ्यता से ओत-प्रोत करनेवाले कथाकारों में निर्मल वर्मा अग्रणी हैं। उनकी रुमनियत वास्तव में आधुनिक चिन्तन से मिश्रित है । उसमें बौद्धिकता के कण भी दृष्टिगोचर हैं । उनके साहित्य में उच्चवर्ग के पात्र ज़िन्दगी के बहुआयामी आस्वादन करते हैं , तो मध्यवर्ग टूटी हुई आशाओं को लेकर शोकग्रस्त जीवन बिताने केलिए बाध्य है । परम्परागत मूल्यों के विघटन के कारण आधुनिक युग में नए मूल्य की स्थापना हुई है। परम्परागत जीवन में जो बात अनैतिक मानी जाती थी, वही बात आधुनिक जीवन में नैतिक बन गई है ।

उपसंहार

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य के सरसरी विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उनके कथा साहित्य में परम्परा का विरोध है और उसके स्थान पर मुक्ति की कामना है। नैतिक मूल्यों से , पारिवारिक संकल्प से और विवाह संस्था से , वे मुक्ति चाहते हैं। वे अपनी लेखनी के द्वारा पाश्चात्य सभ्यता एवं आधुनिकता का अद्भुत खुलापन चाहते हैं, जो आज भारतीय आर्ष संस्कृति को ढकेलकर हमारे समाज में व्यापक बनता जा रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि निर्मल वर्मा समकालीन यथार्थवादी कथाकार हैं। नई कहानी के वक्ता के रूप में तथा आधुनिकता के प्रणेता के रूप में उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत में अपनी निजी पहचान बनायी रखी है ।

संदर्भ :

1.डॉ नामवर सिंह , कहानी : नई कहानी ,पृ -52 राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।

2.डॉ चंद्रभान रावत & डॉ रामकुमार खण्डेलवाल ,आधुनिकता:एक पहचान ,पृ -11

3. कमलेश्वर , माँस का दरिया (भूमिका) ,पृ-09 आर्य प्रकाशन मण्डल ।

4. निर्मल वर्मा , बीच बहस में ,पृ-39-40 वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली।

5. निर्मल वर्मा , परिन्दे ,पृ-105 वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली।

6. निर्मल वर्मा ,सितंबर की एक शाम, पृ -116, राजपाल & संस, दिल्ली।

7. निर्मल वर्मा ,लालटीन की छत ,पृ-60 वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली।

8. निर्मल वर्मा , बीच बहस में ,पृ-77 वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली।

9. निर्मल वर्मा ,परिन्दे , पृ-98-99 वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली।

◆ सह आचार्या , हिन्दी विभाग
सनातन धर्म कॉलेज
आलप्पुझा , केरल।
drveenaprasad@gmail.com

भारतीय भाषाएँ और नयी शिक्षा नीति

◆ **डॉ.पवन कुमार शर्मा**

शिक्षा ही प्रत्येक देश के बच्चों तथा युवाओं के भविष्य की आधार शिला रखती है। इसलिए देश की शिक्षा व्यस्था में देश की सांस्कृतिक चेतना एवं भविष्य के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण होना अनिवार्य होता है। भारतीय भाषाओं को प्राय़ः प्राथमिकता देती नयी शिक्षा नीति को 29 जुलाई 2020 को माननीय प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी की अध्यक्षता में हुई कैबिनैट की बैठक में मंजूरी दे दी गई।

भाषा समस्त साहित्य एवं संस्कृति की

पहचान है। भाषा से ही साहित्य और संस्कृति का स्वरूप बनता है। भाषा किसी भी समाज या राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और समृद्धि का प्रमाण होती है। भाषा निर्माण-प्रक्रिया कब और कैसे आरम्भ हुई, इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। भाषा व्यक्ति तथा राष्ट्र की समृद्धि की भी पहचान है। भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यावहारिक सन्दर्भों को व्यक्ति जब जान लेता है तब उसके कार्य एवं व्यवहार में प्रखरता आ जाती है। सम्प्रेषण-कौशल आसान हो जाता है। प्रत्येक देश का साहित्य उसकी भाषा, संस्कृति आदि पक्ष मिलकर एक विशिष्ट पहचान बनाता है।

आज व्यावसायिकता और व्यावहारिकता की दौड़ में आत्मविकास की ललक प्रबल हो गयी है। वर्तमान परिवेश में संस्कृति, राष्ट्रीय अस्मिता और वैश्वीकरण के मध्य सामंजस्य के बिन्दु खोजने की आवश्यकता है। 'भाषा' संस्कृति एवं मूल्यों की पहचान होती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति, भारतीय जीवन पद्धति, जीवन दर्शन आदि आज भी पूर्ण रूप से प्रासंगिक हैं।

स्वस्थ समाज और समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का महत्व निर्विवाद रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारत में प्राचीन समय से ही शिक्षा व्यवस्था की परम्परा समृद्ध रही है। भारत दुनिया में विश्वगुरु कहलाता था। भारत की महान ज्ञानपरकता और शिक्षा व्यवस्था ने आर्यभटट्, वराहमिहिर, चरक, सुश्रुत, पाणिनी, नागार्जुन, गौतम, मैत्रेयी, गार्गी जैसे अनेक महान विद्वान विभूतियों को जन्म दिया है। इन्होंने अपनी भाषा में खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा, व्याकरण, दर्शन, योग, अभियान्त्रिकी, वास्तुकला, भवन-निर्माण आदि में विश्व को अपना योगदान दिया। समय परिवर्तनशील है। भारत में कभी नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला जैसे विश्व स्तर के शिक्षण संस्थान हुआ करते थे। राजनैतिक व ऐतिहासिक कारणों ने गौरवशाली शिक्षा प्रणाली को नष्ट कर दिया।

स्वतन्त्रता के पश्चात शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में तैयार की गयी। इस नीति के अन्तर्गत त्रिभाषा सूत्र का निर्माण, क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन पर बल, संस्कृत भाषा का अध्ययन, 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निशुल्क अनिवार्य शिक्षा आदि प्रमुख थे।

सन् 1986 में दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा लागू की गयी। इस नीति में जी.डी.पी का कुल 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने की सिफारिश की गयी थी। सन् 1992 में इसमें कुछ संशोधन किये गये। इस नीति में क्षेत्रीय भाषाओं की वकालत की गयी थी, साथ ही विदेशी भाषाओं के अध्ययन की सुविधा तथा हिन्दी को सम्पर्क भाषा के तौर पर विकसित करने की आवश्यकता जतायी गयी थी।

वर्ष 2020 में नयी शिक्षा नीति में मातृभाषा और स्थानीय भाषा में शिक्षा देने पर बल दिया गया है। इस शिक्षा नीति के अध्याय 4 और अध्याय 22 दोनों में शिक्षा के माध्यम के रूप में भाषा, भाषा का संरक्षण व संवर्धन और अनुवाद के लिए नीति निर्धारित की गयी है। अध्याय 4 में मातृभाषा और स्थानीय भाषा को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम और आगे की कक्षाओं में भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना निर्धारित किया गया है। अध्याय 22 में समस्त भारतीय भाषाओं, कला और संस्कति का संर्वधन करने की बात की गयी है। बहुभाषिकता शिक्षा प्रणाली में आज की आवश्यकता बतायी गयी है।

मातृभाषा के महत्व को रेखांकित करते हुए भाषाविदों का मानना है कि मातृभाषा में बच्चा शिक्षा जल्दी समझता है तथा अधिक तर्कशील बनता है एवं रचनात्मकता का बौद्धिक विकास होता है। इससे दिमाग पर अतिरिक्त भार नहीं पड़ता। मातृभाषा में शिक्षा से बच्चों में कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकता है।

महात्मा गांधी ने 20 अक्टूबर 1917 को गुजरात के भडौच में एक शिक्षा सम्मेलन में कहा

था- "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ पड़ता है, वह असह्य है। यह हमारे बच्चे उठा सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत हमें चुकानी पड़ती है, वे दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते हैं। इससे हमारे स्नातक अधिकतर निक्कम्मे कमज़ोर, निरुत्साह, रोगी और कोरे नकलती बन जाते हैं। इससे हम नयी योजनाएँ नहीं बना सकते और यदि बनाते है तो उन्हें पूरा नहीं कर पाते हैं"।[1].

यूनेस्को की ग्लोबल रिर्पोट 2005 में भी सिफारिश की गयी है कि जातीय रूप से विविधतापूर्ण समुदाय में न्यूनतम 6 वर्षों तक मातृभाषा में शिक्षा देना अनिवार्य है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षा के माध्यम से इतर दूसरी भाषा बोलनेवाले मुख्य धारा से पीछे न छूट जायें। [2].

पूर्व शिक्षा नीतियों की भाँति नयी शिक्षा नीति में भी बहुभाषावाद और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने की ज़रूरत को ध्यान में रखते हुए त्रिभाषा सूत्र को लागू किए जाने की बात कही गयी है। इसके लिए किसी राज्य पर कोई भाषा नहीं थोपे जाने का प्रावधान किया गया है। यह कदम सभी भारतीय भाषाओं में संतुलन बनाने के उद्देश्य से उठाया गया है। सभी राज्य अपनी ज़रूरत के अनुसार तीनों भाषाओं का निर्धारण कर सकेंगे।

इस प्रकार एन.ई.पी 2020 में भारतीय भाषाओं पर बल प्रमुख विशेषता है। 'बहुभाषिकता' अध्ययन – अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन' है।[3] भारतीय भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन को ध्यान में रखते हुए कहा गया है - "जहाँ तक संभव हो कम से कम ग्रेड 5 तक, लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/ क्षेत्रीय भाषा होगी"। [4]. एन.इ.पी. के अध्याय 'उच्चतर शिक्षा' में समता और समावेश में स्पष्ट उल्लेख है कि "भारतीय भाषाओं और द्विभाषी रूप से पढ़ाए जानेवाले अधिक डिग्री पाठ्यक्रम विकसित करना"।[5]

22 वें अध्याय में इसे फिर से पुनर्व्याख्यान्वित किया गया है। भारतीय भाषाओं कला और संस्कृति का संवर्धन रेखांकित करते हुए कहा गया है- "मातृ भाषा / स्थानीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करने और / या कायक्रमों को द्विभाषित रूप में चलाने के लिए निजी प्रशिक्षण संस्थानों को भी प्रोत्साहित किया जायेगा एवं बढ़ावा दिया जायेगा। [6].

उच्च शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं की गुणवत्तावाली सामग्री और अन्य महत्वपूर्ण लिखित एवं मौखिक सामग्री उपलब्ध हो सके, इसके लिए एक इंस्टिट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एण्ड इण्डरप्रिटेशन (आई.आई.टी.आई) की स्थापना की जायेगी। "सभी भारतीय भाषाओं और उससे सम्बन्धित समृद्ध स्थानीय कला एवं संस्कृति के संरक्षण हेतु सभी भारतीय भाषाओं एवं और उनसे संबंधित स्थानीय कला एवं संस्कृति का वैब आधारित प्लेटफार्म पोर्टल विकीपीडिया के माध्यम से दस्तावेज़ीकरण कराया जायेगा"। [7].

भारतीय भाषाओं के संवर्धन और संरक्षण के सन्दर्भ में भारतीय भाषाओं तथा बहुभाषिकता पर बल देते हुए कहा गया है - "भारतीय भाषाओं एवं बहुभाषिकता पर ज़ोर देते हुए एन.ई.पी में त्रिभाषा का भी उल्लेख है"। [8]यह 1986 एन.इ.पी. के त्रिषा सूत्र से थोड़ा अलग है। पूर्व में हिन्दी प्रदेशों में जहाँ स्कूली स्तर पर अंग्रेज़ी, हिन्दी व एक अन्य भारतीय भाषा पढ़ाये जाने की बात थी वहीं हिन्दीतर राज्यों में अंग्रेज़ी के साथ-साथ उस राज्य की प्रमुख क्षेत्रीय भाषा और हिन्दी पढ़ाये जाने का प्रावधान था। [9].

एन.इ.पी. की एक दूसरी समस्या विदेशी भाषाओं के अध्ययन से संबन्धित है। एन.ई.पी. में कहा गया है कि छात्रों में एक वैश्विक दृष्टि विकसित करने हेतु सकेण्डरी स्तर पर विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन करवाया जायेगा। [10]. भाषायी परिवेश और उसका दैनिक उपयोग न होने के कारण बच्चे आम तौर पर इन विदेशी भाषाओं को भूल जाते हैं।

शिक्षा नीति में प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक आमूल चूल बदलाव किए गये हैं, जिनका

भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा/ वर्तमान में चल रही 10+2 प्रणाली के स्थान पर पढ़ाई की रूपरेखा 5+3+3+4 के आधार पर तैयार की जायेगी। प्रथम तथा द्वितीय कक्षा में भाषा व गणित विषय पर बल दिया जायेगा, इसके साथ चतुर्थ तथा पंचम कक्षाओं में बच्चों के लेखन कौशल पर ध्यान दिया जायेगा। बच्चों में नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत मातृभाषा तथा गणित के प्रति जागरूकता हेतु भाषा सप्ताह तथा गणित सप्ताह का प्रावधान किया गया है।

सन्दर्भ

1. अंग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल – सानू सत्रत्रन्त, - प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली – 2015
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.इ.पी) 2020 मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार ; पृ. 07
3. एन.ई.पी. 2020 अनुच्छेद 22.10
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.इ.पी.) 2020; मानव - संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार; अनुच्छेद 4.11
5. एन.ई.पी. 2020, अनुच्छेद 14.4.2
6. वही, अनुच्छेद – 22.14
7. वही, अनुच्छेद 22.19
8. वही, अनुच्छेद 4.13
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 प्रोग्राम आण्ड एक्शन; अध्याय-लैंग्वेजज़ डेवलपमेंट, अनुच्छेद – 10.
10. एन.ई.पी. अनुछेद 22.15

◆ सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
हिन्दू कन्या महाविद्यालय, धारीवाल, पंजाब।
मोबाईल नं. - 7888570282

सामाज्यवाद के खिलाफ गिरिराज किशोर के जूझते तेवर - 'असलाह' उपन्यास के विशेष परिप्रेक्ष्य में

◆ डॉ पूर्णिमा आर.

प्रस्तावना : इनसान की ज़िन्दगी का इतिहास युद्धों का इतिहास भी है। प्रारंभिककाल में युद्ध उनकी अस्तित्वगत ज़रूरत थी। अस्तित्व की रक्षा केलिए वह प्रकृति से, जानवरों से लड़ता था। लेकिन आज उसका अस्तित्व युद्ध की वजह से खतरे में है। यह आज एक उद्योग का रूप धारण कर चुका है। विकसित देशों की अर्थव्यवस्था आज युद्धों से ज़्यादा मज़बूत हो गई है।

हथियार-व्यापार करके साम्राज्यवादी शक्तियाँ युद्ध को बढ़ावा देती हैं। युद्ध को बनाए रखने के पीछे साम्राज्यवादी राजनीति का बड़ा हाथ है। साम्राज्यवादी राजनीति का स्वरूप आजकल अत्यन्त विकृत बनता नज़र आ रहा है कि इसके सामने मानव या मानव-मूल्यों का कोई स्थान नहीं रह गया है।

गिरिराज किशोर के 'असलाह' उपन्यास में हथियारों के प्रति अन्धे मोह के कारण अमानवीय रास्ते की ओर चले अमरी की कथा कही गई है। "इनसानों में सर्वोच्च इनसान और शक्तिशालियों में अभूतपूर्व शक्तिशाली बनने की कोशिश में वह अपनी सारी इनसानियत सुखा देता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह हथियारों को पालता-पोसता है। उनका लक्ष्य विचित्र हथियार के ज़रिए धरती को जल में और जल को पत्थर में बदल देना है"[1]।

अमरी-हथियारों का दोस्त

अमर उर्फ अमरी के मन में हथियारों के प्रति अदम्य शौक बचपन से ही हुआ है। उसके पिता एक दारोगा था। जबसे अमरी ने होश संभाला, तब से उसने पिता को बगल में पिस्तौल लटकाए ही देखा था। एक दिन पिता की अनुपस्थिति में तोशदान से उसने पिस्तौल हाथ में ले लिया। इस पर पिता ने उसे पेटी से खूब मारा। उस मार ने बेटे से ज़्यादा हथियार को महत्वपूर्ण बनाया। दूसरे दिन पिता से पटाखेबाज पिस्तौल प्राप्त करने पर भी वह खुश न हुआ। क्योंकि बालक अमरी असली हथियारों से प्रेम करनेवाला हो चुका था, अब उन्हें नकली हथियार

की ज़रूरत नहीं।

असलाह घर के रखवाले के बेटे के साथ अमरी की दोस्ती होती है। उसी के द्वारा हथियारों का अनोखा संसार उनके सामने खुल जाता है। ''असलाह घर में जाने के बाद वह गूँगा हो गया। आँखों में चमक और ज़बान बन्दा। उसे देखने से लगता था कि वह ज़मीन से एक बालिश्त ऊपर उठकर चल रहा है। बिजली की लहर की तरह कोई दैवी संस्पर्श उसके शरीर में पैवस्त हो गया था। कहाँ पहुँचेगा यह उसे खुद मालूम नहीं था''[2]। इंचार्ज का तबादला होने पर हथियारों की देखरेख के लिए नया अधिकारी आता है। उससे भी अमरी हथियारों को देखने की इच्छा प्रकट करता है। असहमत होकर अधिकारी उसे सीधे मार्ग की और जाने की प्रेरणा देता है।

आदमी से कम और हथियारों से ज़्यादा प्यार करनेवाले अमरी की शादी एक पढी-लिखी लड़की से होती है। अपनी प्रथम-रात्रि में ही अमरी पत्नी से बताता है, देखो, ''मुझे हथियार चाहिए - मैं उन्हें खरीदूँगा, बनाऊँगा, चोरी करूँगा, जैसे भी मिलेंगे... मोहय्या करने की कोशिश करूँगा। तुम मुझे हथियारों से चलनेवाले बच्चे दोगी''[3]।

अमरी पिता हो गया। हथियारों के बढ़त के साथ- साथ उसके बच्चे भी बढ़े। अपने हर बच्चे के नाम पर उसने हथियारों का नामकरण किया, जैसे ध्रुव, ध्रुव-दो। अमरी की पत्नी डरती थी कि बच्चे भी पिता के समान टेढ़े, फौलादी और बेदिल हो जाएँ। उसका यह डर सच निकला । छोटे बच्चे के सिवा सारे बच्चे पिता की राह पर निकले। माँ के विरोध को उन्होंने अनसुना किया। बच्चे दिन-रात परेड में खोए रहे। दिन का अधिकांश वक्त वे हथियारों के साथ गुज़ारे। अमरी तो मौके-बेमौके उस्तादों को बुलाकर उन्हें तालीम देता था। उनके हाथों, कपडों और बिस्तरों में गन पाउडर की सी गन्ध रम गई थी।

छोटे बच्चे माँ की राह पर चलता था। माँ के लिए अगर यह दुनिया ज़िन्दा है तो वह छोटे बच्चे के माध्यम से था। इसको भी अमरी अपने हाथों से छीनकर ले जाएगा, ऐसी चिन्ता उसे अशान्त करने लगी। अमरी ने अपना नया हथियार छोटे बच्चे को सौंपने का निश्चय किया। लेकिन वह हथियार को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने के पक्ष में था। इससे किसी भी प्रकार का प्रेम-संबन्ध स्थापित करने केलिए वह तैयार नहीं हुआ। छोटा बच्चा माँ की आवाज़ को ज़्यादा महत्व देकर अमरी से विद्रोह करने को उद्यत हुआ।

<u>प्रतीक विधान</u>

उपन्यास में अमरी हथियार -प्रेमी आदमी का प्रतीक है। उसका हथियार-प्रेम साम्राज्यवादी ताकतों का हथियार-प्रेम है। अमरी का कहना है, अगर संवेदनशील होना है तो हथियारों के प्रति हो.. प्यार करना है तो हथियारों के प्रति हो.. प्यार करना हे तो हथियारों से प्यार करो... जीना है तो हथियारों के लिए जिओ। हथियार ही तुम्हें वास्तविक स्वतंत्रता दिला सकते हैं। वे मानते हैं कि इनसानों, जानवरों, पेड़-पौधों से हज़ारों साल से हम प्यार करते हैं। प्यार की इस लंबी श्रृंखला में हथियारों का प्यार एक नये युग की शुरुआत करता है। यही आधुनिकता और विज्ञान को प्यार करना है। संस्कृति का एक नया आयाम।

इनसान और उसके प्रेम के सबसे बड़े दुश्मन हथियारों के पीछे पागल होने के कारण अमरी अपनी प्रेमिका को खो देता है। ''चानमारी के मैदान में वह प्रेमिका से मिलने के लिए न आता है। वह तो वहाँ उस बदबू के लिए आता था, जो मौत की गंध से भरी रहती थी। उस ठूँ-ठाँ केलिए आता था, जो कानों का बहरा कर दे पर आमादा रहती है''।

पेशे के रूप में मास्टरी मिलने पर भी अमरी का मन उसमें नहीं लगता है। वह हथियोरों की विचित्र दुनिया में भटकता है। अमरी का प्रेम सिर्फ हथियारों से है। हथियार -प्रेम को बनाए रखने के लिए वह अपने पुत्रों से प्यार करता है। अपने मार्ग से हमेशा बाधा पहुँचानेवाली पत्नी के प्रति उसके मन में तिरस्कार की भावना है। पत्नी की समझ उसकी समझ से मेल न खाती थी। पत्नी छोटे बच्चे को स्वयं के साये से अलग करना नहीं चाहती है। जब वह बच्चा माँ के दिखाए रास्ते पर चलकर पिता से विद्रोह करने लगता है तो अमरी सोचता है कि ''शायद यह लड़का उसका अपना नहीं है''। उसके मन में लगातार यह शंका बनी रहती है। ''उसकी माँ ने उसको अपनी योनिबद्ध मानसिकता के साथ लिंगमय पुरुष बनाकर छोड दिया''[4]।

अमरी के दिखाये रास्ते पर चलकर बड़े लड़के हथियारों के दीवाने हो गए। अब हथियारों के बिना वे अपने को अस्तित्वहीन मानते हैं। ''हमारी जान ले लो, पर हमारे हथियार वापस कर दो -हम बिना हथियारों के नहीं रह सकते। हमने सब रिश्ते मिटा दिए... बहन - भाई का ... भाई... भाई का...

माँ और बेटा-बेटी का.. एक ही रिस्ता माना, हथियारों का''[5]।

युद्ध की अमानवीयता को भोगनेवाली स्त्रियों का प्रतीक है अमरी की पत्नी। बच्चों की हरकतें देखकर वह सोचती है कि अपनी कोख हथियार डालनेवाली एक भट्टी मात्र है। उसके शरीर में प्राण तो बचा हुआ है, लेकिन माँ की हत्या होती रहती है। पति तो उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा। उसकेलिए हथियार का सान्निध्य पत्नी से ज्यादा महत्वपूर्ण है। बच्चों के मन में मानव -प्रेम और हथियार -विरोधी राग भरने के कारण वह पति के क्रोध और भर्त्सना की पात्र हो गयी। अमरी के विरोध में लोग विरोध करने लगे तो पत्नी अकेली इसे सहती है। पति के हथियारों की तपिश से झुलसनेवाले लोगों की आहें वह रोज़ सुना करती थी। क्रोध के मारे आदमी अमरी के घर पर पत्थर फेंका करते थे। माँ तब चिल्लाती थी कि यहाँ न कोई हथियार है, न हथियारवाले।

सभी संघर्षों और तनावों को झेलने के बावजूद उसका मातृत्व सफल निकलता है। छोटा बच्चा पिता के हथियार - प्रेम के खिलाफ विद्रोह करने लगा तो उसकी सारी अशा-आकाँक्षाएँ सार्थक निकलीं। क्योंकि वह इनसानियात की राह पर खड़ा है। उसकी यह जीत बरबरता के खिलाफ इनसानियत की जीत है।

गिरिराज किशोर की युद्धविरोधी चेतना का सीधा साक्षात्कार अमरी की पत्नी और उसके छोटे बच्चे में होता है। पत्नी का विद्रोह पति की युद्धकामी मानसिकता से है। पुत्र पिता से विद्रोह करता है। अमरी की पत्नी अपने बच्चों को मानवप्रेम की राह दिखाती है। उसकी नस-नस में युद्धविरोधी चेतना भरी हुई है, इसी भावना का समावेश वह अपने छोटे बेटे के मन में कर लेती है। माँ -बाप के पक्ष-विपक्ष के बीच में फँसकर दूसरे बेटे अमरी के दिखाये मार्ग पर चलता है। छोटा बालक मानवप्रेम और शान्ति का रास्ता स्वीकार करता है। यह प्रसंग यहाँ पर उपन्यासकार की अपनी कामना को द्योतित करता है, क्योंकि उत्तरोत्तर तबाही की ओर बढ़ती साम्राज्यवादी राजनीति की धुन के बीचोंबीच भी उम्मीद का बारीक रेशा तलाशनेवाले उपन्यासकार की यह मानवीय दृष्टि भी है। वे निराशा के गर्त में अपने आपका अनुभव करना नहीं चाहते। उस गर्त में मुक्ति की कामना से वे आत्मीयता की तलाश करते हैं।

यहाँ गिरिराज किशोर अमरी को एक व्यक्ति नहीं, संस्था के रूप में परिलक्षित करते हैं। उसके सपनों में एक ऐसे हथियार की परिकल्पना है, जो आसमान को गर्द - गुबार मात्र बना दे। दरख्तों को कोयले में बदल दे। फल ज़हर हो जाएँ, धान और गेहूँ की बालों से खुसियानी के बीज झरने लगे।

इस उपन्यास के ज़रिए लेखक चेतावनी देते हैं कि हमें रक्षा के पथ को अपनाना है, क्योंकि अब हम हथियार के अधीन हो चुके हैं, साम्राज्यवादी शक्तियों के काबू में हैं। अब हम मानवता की विपुल संपत्ति, मानव संसाधन और मेधा का प्रयोग पूरी तरह से हथियारों के संचालन के लिए कर रहे हैं। युद्ध के समय हम हथियार-संचय को रोकने की बातें करते हैं। किन्तु युद्ध के बाद उसको इजाफा होता है। हथियारों की विनाशकारी शक्ति और तबाही से हम अनभिज्ञ नहीं, फिर भी उसकी रफ्तार कम होने के बजाय तेज़ होती जा रही है। इसे रोकना है, नहीं तो अमरी की ज़िन्दगी की तरह हमारी ज़िन्दगी भी सौरभहीन हो जाएगी। यहाँ एक असहिष्णु और विद्रोही परंपरा का जन्म होगा।

निष्कर्ष:

हथियार-निर्माण के लिए जो धन खर्च करता है, उसे मानवता के विकास में लगाना चाहिए। इससे हथियारों की होड़ से आतंकित मानवता को साम्राज्यवादी चाल से मुक्ति दिला सकते हैं। साम्राज्यवादी दमन-चक्र में फँसे आधुनिक मानव सही रास्ते से भटककर लक्ष्यहीन होकर जा रहे हैं। यदि इस तरह आगे बढ़ेगा तो दुनिया में इनसान का अस्तित्व न रह जाएगा। युग की इस जलती समस्या को सशक्त भाषा में अभिव्यक्त करके गिरिराज किशोर ने मानवीय चेतना को आलोकमय बनाने की सफल कोशिश की है।

ग्रन्थ - सूची

1. असलाह - गिरिराज किशोर (नेशनल पब्लिशिंग हाउस-नई दिल्ली - पृ. सं - 71
2. वही
3. वही - पृ.सं-44
4. वही- पृ.सं. - 100
5. वही - पृ. सं. 107

◆ असोसियेट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
सनातन धर्म कॉलेज
आलप्पुषा।

‘तीसरा लिंग विमर्श’ के सन्दर्भ में ‘तीसरी ताली’

◆ डॉ.रीनाकुमारी वी.एल

प्राकृतिक रूप से विपरीत लिंग में जन्मे बच्चों के प्रति परिवार और समाज का नज़रिया उन्हें दूसरे लोक में थकेल देता है, जिसे समाज,'तीसरी दुनिया','थर्ड जेंडर','किन्नर','हिजड़ा' आदि के रूप में पहचानता है। आजकल विमर्श के तहत तीसरे लिंग को समाज की मुख्य धारा में प्रतिष्ठित कराने का प्रयास किया जाता है। इन्हें केंद्र में रखकर समाज, संस्कृति,परंपरा एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए उनकी स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की प्रक्रिया ही ‘तीसरा लिंग विमर्श’ है। प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'तीसरी ताली' एक समस्या प्रधान तथा किन्नरों के जीवन की विडंबनाओं को बतानेवाला उपन्यास है। इस उपन्यास में किन्नर समाज की व्यथा,पीड़ा, समस्या तथा उनके संपूर्ण जीवन को अत्यन्त बारीकी के साथ उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द: किन्नर, लौंडेबाज, यौन शोषण, हिजड़ा, कुवागम मेला, यथार्थवादी,सामाजिकता ।

“अब मिली हमें भी एक नई पहिचान
हिजड़े,नपुंसक, छक्के, गाली की तरह,
दुनियाँ देती रही एक नया नाम,
हम हारे नहीं, हार मानी नहीं,
नहीं स्वीकार किया, बद्जुबानों से मिला मुकाम,
जीत ली हारी हुई बाजी हमने,
तब जाकर मिली है नई पहिचान ।
अब अपना एक नाम है, एक पहिचान है,
अब दुनियाँ और उसका स्वरुप बदल रहा है,
अब मैं हूँ, ‘तृतीय लिंगी TheTransgender’
यही होगा अब हमारा,
स्थायी अस्तित्व और नाम,
अब तृतीय लिंगी है हमारी पहिचान,
अब मिली है हमको भी पहचान ।”[1]

पिछले कुछ दशकों में विचारधारा और चिन्तन की दुनिया में आये वैचारिक और अवधारणात्मक बदलावों ने ‘अस्मिता’ या ‘अस्तित्व’ की समस्याओं को समाज एवं साहित्य के केंद्र में खड़ा कर दिया, जिसके फलस्वरूप अनेक विमर्शों का जन्म हुआ जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि । रोहिणी अग्रवाल जी का कथन है- “किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण में न देखकर, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय सन्दर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना विमर्श है ।”[2]

आजकल विमर्श के तहत तीसरे लिंग को समाज की मुख्य धारा में प्रतिष्ठित कराने का प्रयास किया जाता है । तीसरे लिंग के अंतर्गत हिजड़ा कही जानेवाली मानव-प्रजाति ही आती है । हिजड़ा से तात्पर्य उन लोगों से है जिनके जननांग का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है । ये पुरुष होकर भी स्त्रैण स्वभाव के हैं । अर्थात् ये न पुरुष हैं न स्त्री । उनको पुरषों की जगह स्त्रियों के बीच रहने में सहजता महसूस होती है। वे न तो सम्बन्ध बना सकते हैं और न ही गर्भ धारण कर सकते हैं । यह समुदाय एक तरह से न्यूट्रल है। उनमें सभी यौनिकताओं का समावेश संभव है। अंग्रेजों ने इन्हें ‘Transgender’ कहकर पुकारा है। हिजड़ों की चार शाखाएँ हैं- बुचरा, नीलिमा, मनसा और हँसा। बुचरा जन्मजात हिजड़ा होता है। नीलिमा स्वयं बना हिजड़ा है। मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हँसा शारीरिक कमी तथा नपुंसकता आदि यौन न्यूनताओं के कारण बने हिजड़े हैं । इसके अलावा धन के लोभ में हिजड़े का स्वांग रखनेवाले भी होते है । इन्हें ‘अबुआ’ कहते हैं । डॉ.विजेन्द्र प्रताप सिंह के अनुसार “हिजड़ा स्त्री या पुरुष जननांगों का स्पष्ट

अभाववाला वह व्यक्ति है, जो न तो स्त्री है और न पुरुष । इनमें सेक्स होरमोन के रिसाव की संभावना नहीं होती है ।"[3]

आजकल भारतीय समाज में और साहित्य में हिजड़ों की समस्या एक सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रही है । अपना हक वह माँग रहा है । राजनीति और चुनाव में भाग लेने का अधिकार उन्हें मिल रहा है । समाज में जीते ही उन लोगों को बहुत सी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं । ये जो हिजड़े हैं, नयी शती की उपज तो नहीं हैं । ये मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर मानव जाति का हिस्सा रहे हैं । भारत के प्राचीन साहित्यों में भी इनका जिक्र मिलता है । आजकल ये 'अन्य' के रूप में निर्वाचन सूची में आ गये हैं, साहित्य में भी ये मुख्य पात्र के रूप में आ रहे हैं । हिन्दी साहित्य में भी उन्होंने अपनी मौजूदगी दर्ज की है । इसी आधार पर हिन्दी साहित्य में आजकल 'तीसरा लिंग विमर्श' का दौर भी शुरू हो गया है । हिन्दी साहित्य में वास्तव में हिजड़ा विमर्श की शुरुआत नीरजा माधवजी के उपन्यास 'यमदीप' (2009) से मानी जाती है । बाद में सन् 2011 में प्रदीप सौरभ जी ने 'तीसरी ताली' उपन्यास के द्वारा हिजड़े लोगों के जीवन को खुलकर अभिव्यक्ति दी । इन दोनों उपन्यासों में हिजड़ों के जीवन का रू-ब-रू चित्रण प्राप्त होता है ।

प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' एक बेहतरीन उपन्यास है, जो जेंडर को लेकर समाज में मौजूद अलगाव एवं तीसरे लिंग में पैदा हुए लोगों के जीवन की बारीकियों को खोलकर दिखाने का सफल प्रयत्न है । इनमें हिजड़ों की कथा के साथ-साथ लौंडे, कॉलगर्ल्स रैकट, लौंडेबाज़, समलैंगिक आदि की कहानी भी आती है । इस उपन्यास के बारे में सुधीश पचौरी का कथन है- "यह उभय लिंगी सामाजिक दुनिया के बीच बरक्स हिजड़ों, लौंडों, लौंडेबाजों, लेस्बियनों और विकृत-प्रकृति की ऐसी दुनिया है जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिये पर ज़िंदगी जीती रहती है। अलीगढ़ से लेकर आरा, वलिया, छपरा, देवरिया यानी ए बी सी डी तक, दिल्ली से लेकर पूरे भारत में फैली यह दुनिया समान्तर जीवन जीती है । समकालीन बहुसांस्कृतिक दौर के गे, लेस्बियन, ट्रांसजेंडर, अप्राकृतिक यौनात्मक जीवन शैलियों के सीमित सांस्कृतिक स्वीकार में भी यह दुनिया अप्रिय, अकाम्य, अवांछित और वर्जित दुनिया है ।"[4] यह उपन्यास हिजड़ों की जैविक संरचना के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना के विभिन्न पहलुओं को पाठकों के सामने उजागर करने का प्रयास करता है । इसकी कथावस्तु हिजड़ा समुदाय के मनुष्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करने के साथ समाज में उनकी निर्धारित भूमिकाओं की आलोचना भी प्रस्तुत करती है ।

कहानी की शुरुआत गौतम साहक के चरित्र से होती है, जिनके घर बेटा हुआ, लेकिन वे हिजड़ों के लाख तीसरी ताली बजाने-गाने के बाद भी दरवाज़ा नहीं खोलते हैं । हिजड़े खीज गये । गौतम साहब के सामने वे पसीने-पसीने हो गये और बोले- "हम हिजड़े ज़रूर हैं, पर हमारे भी कुछ उसूल हैं । हमारे पेट पर लात मारेगा तो भगवान भी इसे माफ़ नहीं करेगा ।"[5] बच्चा होने पर खुशी मनाने का हक बच्चे के लिंग पर निर्भर करता है। पर बच्चा उभयलिंगी है तो यह एक महापाप है, जिसे दुनिया से बचाते-छिपाते हैं गौतम साहक । वह अपनी औलाद को अपने पास रखकर उसे लड़के की तरह पालता है । लेकिन बढ़ते-बढ़ते उसमें स्त्री जन्य सभी गुण आ गये । लेखक के शब्दों में- "उसे लगता कि उसके पिता उसे जबरिया लड़का बनाने पर तुले हैं । वह अपनी बहनों की तरह ही अपने को लड़की मानता था । उसे लड़कों के कपड़े पहनने में परहेज लगा । घर में जब कोई न होता तो वह अपनी बहनों की पैंटी-ब्रा पहने लेता । बिन्दी लगाता । लिपस्टिक लगाता । शीशे में घंटों अपने आपको निहारता ।"[6] विनीत समाज केलिए लड़का और खुद केलिए लड़की थी । जेंडर समस्या के कारण स्कूल में उसकी भर्ती नहीं हो पाती, तो पिता उसे ब्यूटीशियन कोर्स करवाते हैं । आगे वह स्वावलंबी होकर अपना उद्योग शुरू करती है । वह ब्यूटीपार्लर खोलती है ।

एक हिजड़ा है, जो फिल्मी डांसर है, जिसका नाम है सुप्रिया कपूर । हिजड़ा है यह राज़ छिपाकर

सिनेमा में वह आइटम डांस करती थी । उसकी माँग बढ़ रही थी । लेकिन हिजड़ों की ज़िंदगी पर आयोजित लाइव शो में उसने खुलासा किया कि वह हिजड़ा है । "अपनी तीसरी योनि में होने की बात को मैंने आज तक छिपाये रखा क्यों कि मैं जानती थी कि उस रूप में समाज मुझे कभी स्वीकार नहीं करेगा । आज मैं एक मुकाम तक पहुँच गई हूँ और समाज से भिड़ सकती हूँ तो अपनी इस पीड़ा का खुलासा करने की हिम्मत भी मेरे अन्दर आ गई है ।"[7] इससे सिनेमा जगत में हलचल मच गई । कुछ निदेशकों ने उसे अपने फिल्म से निकाल दिया। लेकिन सुप्रिया कपूर डटी रहीं और फैसला किया कि वे खुद फिल्म-निर्माता बनेंगी । एक पत्रिका के इंटरव्यू में उसने ऐसा कहा कि "अब मैं थोड़े दिन हिजड़े की तरह बिकूँगी । मैं कैसी हूँ ? क्यों हूँ ? कितनी पीड़ा सहती हूँ ? इन सवालों से किसी को सरोकार नहीं है । किसी को इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि मेरे जन्म के बाद मेरी माँ ने मुझे देखकर आत्महत्या कर ली । बाद में बड़ी बहन सिर्फ इसी बात केलिए ससुराल से निकाल दी गई कि उसकी बहन हिजड़ी है । मेरे पिता किस तरह तिल-मिलकर मरे, इस बात से किसी को कोई लेना-देना नहीं है । मीडिया को तो बेचने से मतलब है । चाहे वह औरत हो या फिर हिजड़ी । जब तक बिकूँगी तब तक आप बेचेंगे ।"[8]

हिजड़े लोगों की शादी के बारे में भी इस उपन्यास में वर्णन है । कई बार हिजड़े शादी नहीं करते। लेकिन एक दिन की सुहागन बनकर दूसरे दिन विधवा ज़रूर बन जाते हैं । यह प्रथा तमिलनाडु के विल्लूपुरम में आयोजित कुवागम मेले से शुरू होती है। इस मेले में देश भर से हज़ारों हिजड़े आते हैं। रिश्ते-नाते से दूर रहनेवाले तीसरी योनि के इन लोगों को यहाँ एक दिन केलिए सुहागिन बनने का मौका मिलता है । इस तरह उनकी शादी करने की मुराद पूरी होती है । इसके बाद मंगलसूत्र तोड़ने का रस्म है। पुजारी ही मंगलसूत्र काटते हैं । फिर माँग का सिंदूर साफ करके चूड़ियाँ तोड़कर विधवा बन जाती है । सार्वजनिक जगहों पर लोग इनसे बातें करने और इनके साथ खड़े होने तक में अपमान महसूस करते हैं । समाज की मान्यता इनकी यौनिक पहचान के सामने आते ही खत्म हो जाती है । इस परिदृश्य से तंग आकर हिजड़े कहते हैं कि- "हमें तो ईश्वर ने दूसरों को अपशकुन से बचाने की ताकत दी है । हमारा काम दूसरी दुनिया के लोगों को आशीर्वाद देना है, उनकी तरह लड़ना-झगड़ना नहीं। हमारी मुक्ति का यही रास्ता है । इस योनि से मुक्ति केलिए हमें दूसरी दुनिया के लोगों से अलग दिखना चाहिए ।"[9]

यह समुदाय अस्पष्ट जेंडर और यौनिक पहचान के कारण अपने नागरिक अधिकारों से वंचित रहने को भी मजबूर किया जा रहा है, क्यों कि देश की सत्ता दो जेंडर भूमिकाओं पर कार्यरत है। तीसरे की भूमिका को वह स्वीकारता ही नहीं है। यहाँ रोज़गार की विकल्पहीनता इन्हें परम्परागत पेशा, नाच, गाना, बधाई केलिए मज़बूर करती है । हिजड़ा समाज में कुछ लोग ही जैविक रूप में इस समुदाय के हिस्से होते हैं। ये आर्थिक बदहाली, यौन शोषण और समाज द्वारा अपमान से बचने केलिए हिजड़ा समुदाय में प्रवेश करते हैं । इस उपन्यास में ज्योति का प्रकरण इससे परिचित कराता है । हिजड़ा समुदाय का यह उसूल है कि वे किसी भी पूर्ण स्त्री और पुरुष को अपने समूह में शामिल कर नहीं सकते हैं ।

हिजड़ों की बिरादरी में लड़कियों को हिजड़ा बनाने की मनाही करते हुए गुरु सन्त आशामाई कहती हैं- "कुदरत से खिलवाड़ करने का किसी को हक नहीं है । अपने फायदे केलिए किसी को हिजड़ा बनाना पाप है । ऐसा करने पर हिजड़े को सौ बार हिजड़े का ही जनम लेना पड़ता है और फिर भी उसका पाप कम नहीं होता है ।"[10] हिजड़ा बनने केलिए आयी ज्योति को समझाते हुए सोनम् कहती है- "मैं तुम्हें हिजड़ा नहीं बना सकती। भगवान ने तुम्हें पूरा आदमी बनाया है । वैसे भी हम भगवान से डरते हैं। किसी सही आदमी को हिजड़ा बनाना हमारे समाज में कफ्र है।"[11] पर ज्योति स्वयं हिजड़ा बनने का प्रस्ताव रखती है- "माना मैं मर्द हूँ, लेकिन ये समाज मुझसे मर्द का काम लेने केलिए राज़ी नहीं हैं । मुझे इस समाज ने मादा की तरह भोग की चीज़ में तब्दील कर दिया है । मैं मर्द रहूँ, औरत रहूँ या हिजड़ा बन जाऊँ, इससे किसी को कोई फरक नहीं पड़ेगा, पेट की आग तो बड़े-बड़ों

को न जाने क्या-क्या बना देती है ।"[12] ज्योति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति समाज के तथाकथित वर्ग बाबू श्याम सुन्दर सिंह जैसों की उपभोगी प्रवृत्ति और शौकिया रिवाज़ों पर घृणा करने को मजबूर कर देती है । वह दो वक्त की रोटी केलिए नकली हिजड़े के रूप में यौन कर्म को अपनाता है और अपने परिवार का भरण-पोषण करता है । क्यों कि उसका मानना है कि इस लाइन में अच्छी कमाई होती है । पेट की यही आग तो हिजड़ों को नाचने-गाने के साथ समाज की उपेक्षा,उपहास के दंश से बचाने केलिए वेश्यावृत्ति में घुसने और रईसजादों के लौंडेबाजी के शौक को पूरा करने केलिए मजबूर करती है ।

वस्तुतः 'तीसरी ताली' उन लोगों की ताली है जिनके लिए हमारे सुसंस्कृत समाज ने ताली बजाना छोड़ दिया था । किन्नरों का किसी ने ताली बजाकर स्वागत नहीं किया। अर्थात् सम्मान नहीं दिया। लेकिन वे दूसरों के जीवन में खुशी की कामना करती तालियाँ बजाते हैं। इसी ताली की गूँज 'तीसरी ताली' नाम से पूरे उपन्यास में सुनाई देती है ।

सन्दर्भ :

1. डॉ.विष्णुकांत अशोक, युगधारा (ई-पत्रिका)
2. रोहिणी अग्रवाल, इतिवृत्त की चेतना और स्वरुप, पृ.264; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; वर्ष 2016
3. डॉ.विजेन्द्र प्रताप सिंह, भारतीय साहित्य एवं समाज में तीसरा लिंग विमर्श, पृ.41; अमन प्रकाशन, कानपुर; वर्ष 2016
4. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली (फ्लैप में), वाणी प्रकाशन, वर्ष 2011

5. वहीं, पृ.11 6. वहीं, पृ.82
7. वहीं, पृ.177 8. वहीं, पृ.178
9. वहीं, पृ.104 10. वहीं, पृ.30
11. वहीं, पृ.56 12. वहीं, पृ.57

◆ सहायक आचार्य
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम,
केरल राज्य।
9746157666
dr.reenakumarisam@gmail.com

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना

◆ डॉ.सुजित एन. तंपी

आलेख का सार :

पर्यावरण संरक्षण के प्रति भरत में प्राचीनकाल से ही जीवंत परंपरा मिलती है। वैदिक समय में मानव 'पर्यावरण प्रदूषण' के विषय में तथा उनके निराकरण के संबंध में सचेत था। इसलिए वैदिक साहित्य में पर्यावरण का महत्व पूर्ण रूप से वर्णित किया गया है। हमें इससे प्रेरणा पाकर पर्यावरण संरक्षण में जागृत होना जरूरी है।

बीज शब्द- वैदिक साहित्य, भारतीय संस्कृति, पर्यावरण, प्रकृति-संरक्षण, अन्योन्याश्रित भाव

प्रस्तावना

ऐसा विश्वास किया जाता है कि सिंधु घाटी की सभ्यता का विनाश वनस्पतियों एवं अन्य प्राकृतिक संपदा के दोहन के फलस्वरूप प्राकृतिक प्रकोप से हुआ था। इसलिए वैदिक कालीन ऋषियों ने प्रकृति को बिना क्षति पहुंचाये उसकी समृद्धि में अपना जीवन अर्पित किया।इसीलिए वैदिक साहित्य में मानव और प्रकृति के अन्योन्याश्रित भावों की अभिव्यक्ति का विस्तार से विवेचन हुआ है, जिसमें मानव का प्रकृति के साथ गहन और

घनिष्ठ संबंध व्यक्त किया गया है। इस प्रकार वैदिक मानव का पर्यावरण अन्तरसंबन्ध गहराइयों तक रहा है जो आज भी अनुकरणीय है।

पर्यावरण

पर्यावरण एक विश्वव्यापी व्यवस्था है। पर्यावरण शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है – परि+आ+वृ+ल्युद्+सुँ –" परित: आवृणोति इति "; परित आवरणं पर्यावरणम् । 'परि' उपसर्ग के साथ 'आवरण' शब्द के संयोग से 'पर्यावरण' शब्द बना है। 'परि' का अर्थ है – चारों ओर, ईद – गिर्द या परिधि आदि। 'आवरण' का अर्थ है – आच्छादन, किसी वस्तु पर लपेटा गया वस्त्र तथा घेरा आदि। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है –वातावरण, किसी व्यक्ति या विषय की परिस्थिति। 'पर्यावरण' शब्द अंग्रेजी के Environment शब्द का पर्याय है। Environment शब्द फ्रेंच भाषा के 'Environner' शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है – घिरा या घिरा हुआ। पर्यावरण की परिभाषा है "पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है जो किसी जीवधारी अथवा पारतंत्रीय आबादी को प्रभावित करता है तथा उनके रूप, जीवन और जीवित को तय करता है।"

समस्त जैविक एवं अजैविक तत्व प्रकृति में सहअस्तित्व एवं पारस्परिक अंतर्संबंधों के आधार पर ही इस भूमंडल के पर्यावरण का निर्माण करते हैं।जहाँ इनमें अंतर्विरोध या असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न होती है, वहाँ पर्यावरण असंतुलन की समस्या पैदा हो जाती है तथा एक घटक में हुआ परिवर्तन अन्य घटकों में शृंखलाबद्ध परिवर्तन पैदा कर देता है। सजीव-निर्जीव के अतिरिक्त मानव निर्मित समस्त वस्तुएँ भी पर्यावरण के अंग हैं; जिनसे हमारा जीवन-चक्र सुचारु रूप से चलता है।

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चेतना

मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन के स्वरूप को निर्धारित करने में पर्यावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है।भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का शुभारंभ वनों से ही हुआ है। इसी कारण हमारी प्राचीन संस्कृति 'आरण्यक संस्कृति' या 'तपोवनी संस्कृति' के नाम से जानी जाती है। ऋषि-मुनि प्रकृति के शांत, एकांत व निर्मल वातावरण में तपस्यारत होकर तत्वचिंतन में लीन रहते थे। उन्होंने तत्वज्ञान का पहला पाठ प्रकृति की गोद में, प्रकृति से ही सीखा तथा संपूर्ण विश्व को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया। दूसरी ओर हमारी कृषि-परंपरा जीवन-निर्वाह व भरण-पोषण के लिए खेती तथा पशुपालन के काम में संलग्न होकर जीवन के कर्म-पथ में निरत थी।इस तरह ऋषि एवं कृषि भरतीय संस्कृति एवं सभ्यता के दो महत्वपूर्ण पहलू थे।ये दोनों पहलू प्रकृति से अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे।यही कारण था कि अपने तत्व-चिन्तन में ऋषियों ने प्रकृति के नाना उपादानों को प्रमुखता दी, क्योंकि वे अत्यंत जीवनोपयोगी थे।उनके प्रति आदरभाव एवं कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए उन्हें देवोपम तथा पूज्य माना गया।अतः भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक-प्रेम एवं प्रकृति-संरक्षण की भावना इस तरह से घुली-मिली है कि उसे एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना :

वैदिक साहित्य के चार भाग हैं -

1. संहिता (वेदमंत्र) i) ऋग्वेद ii) यजुर्वेद iii) सामवेद और iiii) अथर्ववेद ।
2. ब्राह्मण
3. आरण्यक और
4. उपनिषद ।

वैदिक काल के लोग पर्यावरण के महत्व को पूर्णतः जानते थे।

1.'संहिता' ऋग्वेद में :

ऋग्वेद विश्व के सबसे प्राचीनतम ग्रंथों में सबसे प्राचीन है।इसमें पर्यावरण का उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है। यहाँ पर्यावरण चेतना को हमारी धार्मिक भावनाओं से जोड़कर अप्रत्यक्ष रूप से उनके

संरक्षण एवं संवर्धन को मानवीय कर्तव्य के रूप में निरूपित किया गया है।

"द्यौर्व: पिता पृथ्वी माता सोमो भ्रातादिति स्वसा
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठेतेलयता सु कम् " (1, 191,6)

अर्थात् 'आकाश को पिता,पृथ्वी को माता,चन्द्रमा को भाई तथा अखण्ड प्रकृति को बहन-तुल्य प्रेम और सौहार्द देने चाहिये। यदि प्रकृति के नाना पदार्थों को हम उदार भाव दें और उन्हें जीवन का अंग मानकर नष्ट न होने दें तो वे हमारे लिए वरदान सिद्ध होंगे।'

यजुर्वेद में:

त्यागपूर्ण उपभोग ही पर्यावरण की रक्षा कर सकता है।इसलिए यजुर्वेद में कहा गया है कि –

"ईशावासस्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेनन भुंजीथा:मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।"
(40, 1)

अर्थात् 'इस संसार में जो कुछ भी स्थावर जंगम जगत् है वह सब ईश्वर द्वारा बनाया गया है।उसका उपभोग त्याग की भावना से करें तथा किसी के भी धन को ग्रहण न करें।दूसरों का अधिकार न छीनें ।'

सामवेद में:

" देवस्य पश्य काव्यं " (4,4,3)

यहाँ प्रकृति की प्रशंसा के विषय में कहा गया है कि प्रकृति देवी के सौंदर्य को देखो,उससे प्रसन्नता को प्राप्त करो,जो मूर्त रूप में भगवान का काव्य है। प्रकृति के नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना है।

अथर्ववेद में:

अथर्ववेद का संपूर्ण पृथ्वीसूक्त पृथ्वी के साथ मानवीय संबंध,पृथ्वी के प्रति आत्मीयता, संवेदना, समृद्धि, कर्तव्य, रक्षा आदि के संदेश से परिपूर्ण है।स्वार्थ से कोसों दूर पृथ्वी की सुरक्षा और संवेदना का अनुपम उदाहरण केवल वैदिक साहित्य में ही उपलब्ध है।

"यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम् " (12, 1, 35)

अर्थात् 'हे भूमि ! तेरा जो कोई भाग मैं खुदँ वह पुन: शीघ्र उग आवे। हे खोजने योग्य पृथ्वी !मैं न तो तेरे मर्मस्थल पर चोट करूँ और न ही तेरे हृदय को हानि पहुँचाऊँ। पृथ्वी के प्रति यह संवेदना ही पृथ्वी की सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त करती है।'

2. ब्राह्मण में:

ब्राह्मण काल में कृषिकर्म एक सुव्यवस्थित,समृद्ध एवं पूर्ण विकसित विज्ञान था।शतपथ ब्राह्मण में ऋषियों ने भूमिकर्षण, बीजवपन, संरक्षण, लुलन(कटाई), मृणन इत्यादि संपूर्ण प्रक्रियाओं का साधु निरूपण किया है –

"कृषंते ह स्मैव पूर्वे वपन्तो सन्ति लुनन्तो अपरे
मृणन्त: " (शतपथ ब्राह्मण 1, 6, 1, 3)

3. आरण्यक में:

वैदिक यज्ञ वायु-प्रदूषण निवारण का एक सशक्त साधन है। वायु को शुद्ध और गुणकारी बनाने के लिए जो अणु-भेदक शक्ति यज्ञाग्नि में है वह अन्य वस्तु में नहीं।यज्ञ करने से वायु-प्रदूषण मिट जाता है।

" अग्निहोत्र सायं प्रातगृहाणां निष्कृति: स्विष्टं "
(तैत्तिरीयारण्यक 10,79)

4. उपनिषद् में:

प्रश्नोपनिषद् में प्रकृति तत्व के संरक्षण के प्रति अति उत्तम धारणा उपलब्ध होती है -

" सूर्यो ते चक्षुर्वात: प्राणोइन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्
अस्मृतो नामाहमयरिम स आत्मानं निदद्यों द्यावापृथिवीश्यां " (प्रश्नोपनिषद 11, 22)

अर्थात् 'मैं अपने आप को द्यौ और पृथ्वीलोक के अन्तर्गत जो कुछ है उन सबके संरक्षण के लिए अर्पण करता हूँ, क्योंकि सूर्य मेरा नेत्र है,वायु मेरा प्राण है, अन्तरिक्षस्थ तत्व मेरी आत्मा और पृथ्वी मेरा स्थूल शरीर है।'

उपसंहार

वैदिक साहित्य मानव जाति का महान

धरोहर माना जाता है। वैदिक साहित्य के विश्लेषण एवं व्याख्या से स्पष्ट होता था कि वेदों में पर्यावरण संरक्षण महत्वपूर्ण माना गया है। वैदिक साहित्य के अनुसार मानव ने अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए पर्यावरण के सभी पदार्थों की रक्षा की, उन्हें बढाया, क्योंकि ये पदार्थ ही उसके रक्षक हैं। पर्यावरण संतुलन के लिए वैदिक लोगों का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन बना रहा, जिसने आचरण और व्यवहार को संतुलित रखा, जिससे पर्यावरण के साथ किया गया व्यवहार भी पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने में सहयोगी रहा है। हमें नई पीढ़ियों को वेदों के अमूल्य पाठों का अध्ययन करवाने के लिए विशेष प्रयास किया जाना चाहिये।इससे व्यक्ति और समाज में पर्यावरण और उससे संबंधित समस्याओं के प्रति मौलिक समझ पैदा कर सकता है और संपूर्ण मानव में पर्यावरण के प्रति ज़िम्मेदारी की भावना का विकास भी कर सकता है।

सहायक ग्रंथ :

1.इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आंदोलन - डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव; अनीता पुस्तक सदन,उत्तरप्रदेश; प्र.सं.2012.

2.धार्मिक वृक्ष एवं पर्यावरण – ओ. पी. शर्मा; विकास प्रकाशन, बिकानेर; प्र.सं.2008.

3.वेदों में पर्यावरण – दया दवे; सुरभि पब्लिकेशन्स,जयपुर; प्र.सं.2004.

4.पुराण-साहित्य में पर्यावरण- संरक्षण –नंजला राठौर; डीसेन्ट बुक्स,नई दिल्ली; प्र.सं.2001.

5.पर्यावरण:पारिस्थितिकी –ओमप्रकाश शर्मा; ज्योति पब्लिकेशन्स,बिकानेर; प्र.सं.2012.

वेबसाइट

1.https://kisansahayata.com
2.https://hi.m.Wikipedia.org

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर,
स्नाकोत्तर हिंदी विभाग व शोधकेंद्र,
यूनिवर्सिटि कालेज, तिरुवनंतपुरम, केरल।
मो : 6238657722
ईमेल -nthampisujith@gmail .com

आधुनिक समय में शोषित बचपन

◆ डॉ.विकासकुमार सिंह

सारांश- बालक समाज के महत्वपूर्ण अंग तथा निर्माणकर्ता होते हैं क्योंकि, किसी भी समाज की शुरुआत बालक से ही होती है। मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ बालक ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। आज के बच्चे, कल समाज के महत्वपूर्ण कार्यों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देंगे और समाज को एक नई दिशा में ले जायेंगे। अगर देखा जाये तो बालक ही किसी देश के भविष्य के मुख्य सूत्रधार होते हैं। अत: किसी भी देश के भविष्य को प्रकाशमय बनाने के लिए वहाँ के बालक को संतुलित विकास देने की बेहद आवश्यकता है जिससे वे अपने एवं देश के विकास में अपनी भागीदारी पूरी ज़िम्मेदारी के साथ निभा सकें। बच्चों के समुचित विकास के लिए उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए। क्योंकि, आश्रयहीन बचपन आज भी अपनी आज़ादी को कैद में पाता है। भगवान की तरफ से सभी को बचपन, फूलों की तरह खिलखिलाकर मुस्कुराने, चिड़ियों की तरह

चहचहाकर अपनी मधुर आवाज़ सुनाने तथा तितलियों की तरह खुले आसमानों में स्वतंत्र होकर उड़ने के लिए उपहार में मिला है। फिर भी कुछ बच्चों के लिए बचपन एक जंग लगे बक्शे में बदल जाता है। अकेलेपन का दर्द और गहरी अपेक्षा के तले बच्चों का बचपन कहीं विलुप्त सा हो जाता है और दिखाई नहीं देता। अनाथ बच्चे जिन्हें समाज व संसारवालों के भय या लाज से कोई बिन-ब्याही माँ अथवा विधवा माँ किसी कूड़े के ढेर, पार्क या शिशु-सदन के पालने में छोड़कर चली जाती है, ऐसे बच्चों के भविष्य का अंदाज़ा सहज ही लगाया जा सकता कि ये बच्चे ज़िंदगी भर अपनी पहचान से दूर रहकर अपनी ज़िंदगी फुटपाथों के सहारे बिताने के लिए बाध्य हो जायेंगे। "ये बच्चे बहुत ही अभागे होते हैं, बचपन में मिलनेवाले प्यार भरी थपकियाँ, माँ के आँचल की छाया, बचपन में दूध पिलाने के लिए किया गया ज़बर्दस्ती रूपी प्यार इनके नसीब में दूर-दूर तक नहीं होता है।" [1] बालक पढ़ने के समय जब अपना गृहकार्य पूरा नहीं कर पाता तो माँ द्वारा दी जानेवाली मीठी डाँट भी उसे नसीब नहीं हो पाती, ऐसे बच्चे रूठने-मनानेवाले प्यार से भी वंचित रह जाते हैं। धीरे-धीरे यही अभागे बच्चे संकुचित मनवाले हो जाते हैं जिसके प्रभाव के चलते ऐसे बालमन का गलत कार्यों की तरफ आकर्षण या झुकाव स्वयं ही हो जाता है और आगे चलकर यही बालक समाज के लिए घातक सिद्ध होते हैं। बालक के बचपन में घटित होनेवाली घटनाएँ इन सब परिस्थितियों के लिए काफी हद तक ज़िम्मेदार होती हैं। क्योंकि, बालक अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भीख माँगने तथा श्रम आदि कार्यों में संलिप्त हो जाते हैं और ऐसी ही जगहों पर उनके साथ होनेवाली यौन शोषण की घटनाएँ उनके मन को काफी संकीर्ण बना देती हैं। बालक अपने बचपन को पूरी तरह से अंधेरे में पाता है, शिशु सदन जैसी जगहों पर भी उसका बचपन सुरक्षित नहीं है। वे प्राचीरों के अंदर कैद होकर अपनी मानवीय संवेदनाओं को ढूँढ़ते रह जाते हैं। क्योंकि, वहाँ पर उनके पालनहार भुगतान-भोगी काम करनेवाले कर्मचारी होते हैं, जो अपने दैनिक कार्यों को क्रियान्वित करते हुए बच्चों को सँभालते हैं। इस तरह की परवरिश में संवेदना नाम की चीज़ थोड़ी भी नहीं रह जाती है। इससे स्पष्ट रूप से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसे बच्चे का भविष्य अंधेरे में खोने के साथ-साथ बदनसीबी से भरा हुआ है, जिसका अंत रात के अँधेरों की तरह दूर-दूर तक नहीं दिखाई देता है।

भारतवर्ष में हर साल पण्डित नेहरू के जन्मदिवस को बाल दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसका मुख्य कारण उनका बच्चों के प्रति गहरा लगाव एवं उनका सकारात्मक सोच था। उन्होंने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के माध्यम से भारत देश के भविष्य का उज्ज्वल सपना देखा था। लेकिन, उनका देखा हुआ सपना वर्तमान में कहीं न कहीं धूमिल होता दिखाई देता है। इसका मुख्य कारण बालक आज भी अपेक्षा अथवा उपेक्षा के नीचे अपना बचपन जीने के लिए बाध्य है। जिस उम्र में उन्हें खेलकूद, मनोरंजन एवं स्कूल जाना चाहिए था उस उम्र में वे बाल-श्रमिक बनकर अपने तथा परिवार के पेट का पोषण करने के लिए मज़बूर हैं। ऐसी विकट समस्याएँ उन्हें बचपन जीने से पहले ही परिपक्व बना देती हैं। ऐसा माना भी जाता है कि बच्चे किसी भी देश के वर्तमान ही नहीं, बल्कि भविष्य भी होते हैं। इसलिए जिस देश के बच्चे वर्तमान में जितनी सुख-सुविधा एवं सुरक्षा से परिपूर्ण होंगे, उस देश का भविष्य उतना ही उज्ज्वल एवं आगे बढ़ने की राह पर होगा। परंतु, हमारे देश में बच्चों की दयनीय स्थिति और उनकी पीड़ा किसी से छुपी नहीं है। यहाँ पता नहीं कितने असंख्य छोटू, लाल सिग्नल, ढाबे, और चाय की दुकानों पर अपना बचपन गुज़ारते नज़र आ जायेंगे, जहाँ पर वे रात-दिन काम करने के बदले तन,मन तथा धन तीनों तरफ से शोषित होते हैं। यहाँ उनका बचपन, बचपन न रहकर परिपक्वता को प्राप्त हो जाता है। बाद में यहीं बच्चे बड़े होकर अपराध की दुनिया में खो जाते हैं। अत: स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि आज आधुनिक समय में बचपन बहुत

ज़्यादा शोषित एवं पीड़ित है ।

बीज शब्द–उज्ज्वल भविष्य, परिपक्व, परिपूर्ण, अवगाहन, बौद्धिक, संवर्द्धन, अंधविश्वास, संरक्षण ।

यदि हम सम्पूर्ण सृष्टि का अवगाहन करें तो चेतन से जड़ तक सभी के विकास की यात्रा उसके शिशु रूप से ही प्रारंभ होती है। जीव जगत में मनुष्य से लेकर सभी पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े हों या जड़ जगत में पेड़-पौधे वनस्पतियाँ सभी का प्रारंभिक रूप उसके बचपन से शुरू होकर जीवन के विभिन्न चरणों से होता हुआ अंत तक पहुँचता है। मनुष्य इस जगत का सबसे बौद्धिक,चिंतनशील और विकासशील प्राणी है। अपनी सभ्यता के संरक्षण और संवर्धन के लिए वह हमेशा प्रयत्नशील रहता है। मनुष्य का बचपन ही उसकी आने वाली पीढ़ी के जीवन का आधार बनता है। लेकिन यह भी सत्य है कि बालकों को उनके संसार को चाहे अनचाहे बहुत उपेक्षित भी रखा गया है। आज के बालजीवन में भी अनेक समस्याएँ देखी जा सकती हैं, जबकि हम सगर्व अपने को अत्याधुनिक और प्रगतिशील मानते हैं। जीवन का अनिवार्य अंग शिक्षा के मामले में आज भी बच्चे काफी पीछे दिखाई देते हैं। सरकार ने साक्षरता मिशन पर तेज़ी से काम किया और साक्षर भारत के सपने को पूर्ण करने के लिए तेज़ी से प्रयत्नशील भी है। फिर भी न ही हर जगह अनिवार्य रूप से मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था है और न ही बच्चों को विद्यालय जाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सका है। विद्यालयों में भी पीने के पानी, भवन, शिक्षक, पुस्तकें और शौचालय आदि का अभाव आज भी दिखाई पड़ता है। विद्यालय न जा पानेवाले के पीछे बालश्रम एक बहुत बड़ा कारण है। अभिभावकों द्वारा बालश्रम को बढ़ावा देने की समस्या के पीछे उनका धनाभाव ही अधिक रहा है। आर्थिक विषमता, एकल परिवार, लिंग भेद, बाल यौन-शोषण, पारिवारिक कलह और तलाक आदि के कारण बाल जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।समय के बदलाव के साथ-साथ ही बालकों की समस्याओं, प्रतिक्रियाओं, उनकी जिज्ञासाओं में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। पहले उनके सम्मुख मुख्य रूप से भुखमरी, आर्थिक तंगी और इससे पैदा होनेवाली कुपोषण व अशिक्षा जैसी समस्याएँ थीं, किंतु आज तेज़ी से बढ़ते नगरीकरण, औद्योगीकरण संयुक्त परिवारों के विघटन और महानगरीय जीवनशैली के कारण अकेलापन जैसी कुछ नई समस्याएँ भी बालकों के सामने आई हैं। मारपीट आदि के माध्यम से शारीरिक हिंसा बाल-शोषण का एक बड़ा कारक रही है। घर में माता-पिता या सौतेली माँ-सौतेले पिता अथवा अन्य पारिवारिक सदस्यों द्वारा और विद्यालयों में अध्यापकों द्वारा बच्चे शारीरिक हिंसा का शिकार होते रहे हैं। परिवार में अत्यधिक अनुशासन के कारण बच्चों को नियंत्रण में करने के लिए हमेशा दंड़ित करने, नियम पालन कराने, नशीले द्रव्य आदि का सेवन करने के कारण पिता द्वारा घर में आतंक से भी बच्चे बुरी तरह प्रभावित होते हैं। सौतेली माँ का व्यवहार जग जाहिर है। विद्यालयों में शिक्षक छोटी-छोटी बातों पर, गलतियों पर बच्चों को दंड़ित करते हैं। बेंत से पिटाई करना, थप्पड़ मारना, बाल पकड़कर उखाड़ना, कान मरोड़ना, लटकाकर रखना आदि तरीके से उन्हें दंडित करने के नाम पर प्रताड़ित किया जा रहा है। बाल शोषण से जुड़े इन विषयों पर भी बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं जिनमें बच्चों के साथ होनेवाले क्रूर व्यवहार को दिखाया गया है। इसी प्रकार समाज में व्याप्त धर्माडंबर, अंधविश्वास और कुप्रथाएँ भी बालकों को प्रभावित करती हैं। "बालविवाह, लड़कियों को शिक्षित न होने देना, भूत-प्रेत के फेर में पड़कर बीमारियों का इलाज न कराना आदि से भी बालजीवन प्रभावित होता जा रहा है।"[2]

संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल अधिकार घोषणा पत्र द्वारा बालक के साथ जाति, भाषा, वंश, धर्म, लिंग, जन्म स्थान, संपत्ति, राष्ट्रीयता एवं अक्षमता आदि के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव या व्यवहार को प्रतिबंधित किया गया है। किंतु, वास्तव में बच्चे पहले की धारणा से पूर्ण संकुचित एवं छोटी मानसिकता के कारण इन सभी भेदभावों के शिकार

होते हैं। लिंगीय भेदभाव, वर्ण, धर्म, जातिगत भेदभाव, अक्षमता, आर्थिक स्तर एवं प्रतिष्ठा के भेदभाव के बहुत सारे मुद्दे हमेशा से उठाये जा रहे हैं। लिंगीय भेदभाव के कारण ही बालिका कन्या भ्रूण हत्या जैसी समस्याएँ आज विकराल रूप ले चुकी हैं। इन समस्याओं के कारण बालिका का जीवन अत्यंत कष्टकारी, दुरूह, उपेक्षित तथा दुखमय अनुभव बनकर रह जाता है। "वहीं धार्मिक अथवा जातिगत भेदभाव के कारण किसी धर्म एवं जाति विशेष का होने के कारण ही बच्चों के कोमल मन-मस्तिष्क पर गलत प्रभाव तथा इस भेदभाव के चरम विकृत रूप सांप्रदायिक दंगों-फसादों-युद्धों की त्रासदी, विभाजन, प्राण गँवाते और अपना सर्वस्व खोते बच्चों में देखे गये हैं।"[3]

जीवन-निर्वाह के निचले स्तर तथा जीवन के लिए अत्यधिक मूलभूत सुविधाओं से दूर बालक की समस्या और बढ़ जाती है जब उन्हें हर जगह भेदभाव से भरे हुए बर्ताव का सामना करना पड़ता है। बिना किसी कारण या वजह के, निर्धनता को उनके लिए अभिशाप बनाकर संबंधियों, रिश्तेदारों द्वारा बालकों का तिरस्कार किया जाता है। अपनी ऊँची प्रतिष्ठा एवं शान बनाए रखने के नाम पर अभिभावक स्वयं ही अपने बालकों को अन्य बालकों से अलग कर उनके बचपन को कीमती महलों में कैद कर देते हैं।[4]

बालजीवन में अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी हैं। बच्चों के स्वस्थ मनोवैज्ञानिक विकास के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि वे अपने से बड़ों की संगत में रहें और उनसे प्यार, वात्सल्य और ममता प्रकट करें, परंतु अभिभावक बच्चों की ज़रूरी मानसिक आवश्यकताओं से या तो अनजान हैं या अनजान बनने का स्वांग करते हैं, जिसके कारण बालकों को कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को झेलने पर विवश होना पड़ता है। इसी कारण ऊपर से स्वस्थ-सामान्य दिखनेवाले बच्चे अंदर से बिखरे, अकेले और अस्त-व्यस्त मानसिकता के शिकार होते रहते हैं और धीरे-धीरे मानसिक बीमारी की ओर बढ़ जाते हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन, एकाकी परिवारों के प्रचलन, कामकाजी अभिभावक का बच्चों पर ध्यान न देना, माता-पिता का अपने बच्चों से बहुत कम वार्तालाप-संवादहीनता और माता-पिता में से किसी एक की मृत्यु आदि के कारण बच्चे में पैदा हुए एकाकीपन के कारण बच्चों में इस मनोवैज्ञानिक समस्या का बीजारोपण होता है, बच्चों में जन्म लेती अनुचित, अवांछित एवं असामाजिक मनोवृत्तियाँ जिनका समय रहते इलाज अथवा उन्मूलन न किए जाने से वे आसानी से अपराधी गतिविधियों की तरफ बढ़ जाते हैं। बच्चों के अंदर यह मानसिक विकार अनेक कृत्यों में व्यक्त होता है। "बच्चों का आज्ञाकारी न होना, विद्रोही स्वभाव, तोड़-फोड़ करना तथा आक्रामक होना, अपशब्द कहना, जिद्दी होना, चोरी करना, झूठ बोलना और हिंसात्मक होना जैसी मनोवृतियाँ मानसिक समस्याओं के ही परिणाम हैं।"[5]

बाल जीवन एवं बाल अधिकारों के संबंध में समाजशास्त्रियों ने तो अपनी आवाज़ उठायी ही है, साहित्यकारों ने भी इसके लिए अपनी आवाज़ बुलंद की है। केवल हिंदी ही नहीं, अन्य अनेक भारतीय भाषाओं, जैसे- उर्दू, बांग्ला, पंजाबी, मराठी, कन्नड़, उड़िया, कोंकणी, राजस्थानी, गुजराती, तमिल, असमिया तथा अंग्रेज़ी में रचित कथा साहित्य में बाल-विमर्श के विभिन्न रूप उभरकर सामने आ रहे हैं, किंतु हिंदी तथा अन्य भाषाओं में रचित कहानी साहित्य में चित्रित बाल-विमर्श का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो अन्य भाषाओं की अपेक्षा बच्चों की समस्याओं तथा उनके मनोविज्ञान के संबंध में हिंदी साहित्य में जितनी गहरी समझ व पकड़ मिलती है उतनी अन्य किसी भाषा के कथा साहित्य में नहीं मिलती। फिर भी बच्चों की अनेक समस्याओं को दिखाती कहानियों के माध्यम से यह अवश्य पता चलता है कि बच्चे जो अपने अधिकारों की माँग, अपने कष्टों का दर्द स्वयं व्यक्त नहीं कर पाते उन्हें

साहित्यकारों ने चाहे वो किसी भी प्रांत के हों, व्यक्त अवश्य किया है।

निष्कर्ष : कभी-कभी यह बात मुझे अचंभित करती है कि बच्चे भगवान के रूप होते हैं फिर भी, हमारे देश में जहाँ बालरूपी भगवान श्रीकृष्ण की पूजा और आराधना होती है, वहीं ईश्वर का अंश कहे जानेवाले बालक के बचपन को छिन्न-भिन्न, प्रताड़ित एवं उनका शोषण किया जाता है । कोमल बच्चे, मन के सच्चे और सभी को अपना समझनेवाले होते हैं। सम्पन्न परिवार का बालक जहाँ अकेलापन और अत्यधिक अपेक्षा के नीचे अपना बचपन घुट-घुटकर एक-एक पल को गुज़ारता है, वहीं विपन्न परिवार का बालक संघर्ष, आर्थिक समस्या, बाल-श्रम करने और उपेक्षा में जीने के लिए मजबूर होता है। अत: स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में बालक बचपन एवं अपनी संवेदना को नहीं जी पाता है, वह अपेक्षा और उपेक्षा के तले अपने बचपन को शोषित पाता है। आज का कोमल मनवाला बालक कल के समय का चुनिन्दा व्यक्तित्ववाला व्यक्ति बनेगा। लेकिन, इसके लिए बालक को उसके बचपन में जीने का अधिकार देना चाहिए, साथ ही साथ उसकी हर सुख-सुविधा का ध्यान भी रखना चाहिए। परंतु इतना कुछ होने के बाद भी आधुनिक समय में बालक स्वयं को शोषित पाता है ।

संदर्भ :

1- यादव, उषा. औरसिंह, राजकिशोर. "हिन्दी बाल साहित्य और बाल विमर्श". सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.

2- शुक्ला, परशुराम. "बाल विमर्श का सैद्धांतिक विवेचन". पाण्डुलिपि से.

3- यादव, उषा. सिंह, राजकिशोर. "हिन्दी बाल साहित्य और बाल विमर्श". सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.

4- वही.

5- वही.

6- वही.

◆ एम.ए., पी.एच.डी. (हिन्दी)

सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश

मो॰ न॰ 9999336674

drvikashsinghh@gmail.com

'तुक' कहानी में चित्रित पारिवारिक घुटन

◆ **डॉ.षेर्लिन**

हिंदी साहित्य की वरिष्ठ लेखिका मृदुला गर्ग की एक छोटी सी कहानी है 'तुक'। इस कहानी में लेखिका ने दाम्पत्य संबंध में आये तनाव,असंतोष, घुटन आदि का चित्रण किया है। मृदुला गर्ग ने दाम्पत्य की असफलता के कारणों के बारे में कहा है -- "असफल दांपत्य की कहानियों में मूल समस्यायें पति का 'खल' स्वरुप, उसमें संवेदना की कमी, पति-पत्नी के बीच अहं की लड़ाई, यौन असंतुष्टि व प्रेमी का आगमन रही हैं"[1] प्रस्तुत कहानी 'तुक' में नरेंद्र का 'खल' स्वरूप और नरेश का अपनी पत्नी की ओर संवेदना होना आदि हम देख सकते हैं।

भारतीय परंपरा में पत्नी का पहला धर्म पति के प्रति निष्ठावान होना है । 'तुक' कहानी की नायिका मीरा भी एक साधारण सुंदर गृहणी है, जो अपने पति के प्रति संपूर्ण रूप से आस्थावान है। मीरा

उन औरतों में से नहीं है जो औरों को विश्वास दिलाने के लिए अपने पति को चाहती हैं । मीरा कहती है "मेरी जान-पहचान की हर शादीशुदा औरत औरों को यह विश्वास दिलाते- दिलाते कि वह अपने पति को 'दिल से चाहती है 'खुद उस पर विश्वास भले ही करने लगी हो , मन से वह जानती है और मैं भी जानती हूँ कि ऐसा है नहीं" ।[2] मीरा अपनी खुशी, अपना सम्मान, अपने विचार आदि हटाकर अपने पति की खुशी में अपनी खुशी ढूँढकर चलनेवाली औरत है। मीरा अपने आपको नरेश के तौर तरीके में ढाल लेती है । अपने बारे में मीरा खुद कहती है कि--"मैं उन बेवकूफ औरतों में से एक हूँ जो अपने पति को प्यार करती है। यह कहना चाहिए कि मैं ही एक वह बेवकूफ औरत हूँ जो अपने पति को प्यार करती है"।[3]

मीरा उन औरतों में से है जो अपने पति को परमेश्वर मानती है। मीरा पूर्णरूपेण अपने पति के प्रति समर्पित है तथा वह नरेश को प्रसन्न रखने का यथासंभव प्रयत्न करती है । परंतु अपने प्रयास में सफल न होने तथा पति का उसकी इच्छाओं के प्रति उदासीन होने के कारण वह स्वयं अपने को मिसफिट कहती है । वह अपने आपको नरेश के लायक नहीं समझती। वह सोचती हैं -"मैं जान गई हूं, मुझ से कुछ नहीं होगा । सोचने-समझने के बावजूद मैं चीज़ों को जिस तरह महसूस करती जाती हूँ, उसमें कोई तुक नहीं होती । मैं इस युग में मिसफिट हूँ । मैं जानती हूँ, मैं उसे ऐसे ही प्यार करती रहूँगी । उसके होने को कभी व्यवसाय की तरह नहीं ले सकूँगी । उसकी नाराज़गी और खुशी को उसकी संजीदगी और हँसी को उसकी दिलचस्पी और रुखाई को व्यावसायिक जीवन के सामान्य उतार-चढ़ाव मानकर कभी स्वीकार नहीं कर सकूँगी । और इसलिए मैं उसे कभी खुश भी नहीं कर सकूँगी । मैं यूं ही दिन में सौ सौ बार मरती रहूँगी, पर उसके लिए तटस्थ होकर कभी जी नहीं सकूँगी" । [4]

पुराने ज़माने की स्त्री के समान मीरा अपने पति के सामने समर्पित है । वह जानती है कि पति के होने से सामाजिक सुरक्षितता है, उसके न होने से सामाजिक असुरक्षितता में जीना उसके लिए और भी क्लेशदायक है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी है कि—"पति का होना उनके लिए एक स्थिति है, जिसके भीतर से और सुखात्मक स्थितियाँ पैदा होती हैं। जैसे बच्चों का होना, घर का होना, घर में ढेरों काम का होना और अपनी तरह के जोड़ों के साथ सामाजिक तालुकात का होना । पति का होना एक तरह का व्यवसाय है जिसके माध्यम से उन्हें पैसा और व्यस्तता दोनों मिलती हैं।"[5]

मीरा का पति नरेश स्टेट बैंक में अकाउंटेंट है, जो बहुत ही सुंदर कार्यकुशल और रौबदार है । शादी से पहले मीरा ने सोचा कि "जो आदमी सारा दिन अंकों खपाता रहता है, वह उनसे छुट्टी पाने पर, शाम को कुछ और चाहेगा: सैर-सपाटा, खुला – मैदान, ताज़ी हवा, फूलों के बगीचे, प्यार की बातें, इधर-उधर की गप्पें, बाज़ार की रंगीनी सजी-धजी दुकानें, चहल-पहल, खाना-पीना फिल्म थिएटर ....."।[6] पर ऐसा कुछ नहीं हुआ । दफ्तर से लौटते ही नरेश ब्रिज खेलने क्लब चला जाता है। दिन भर पति की राह देखनेवाली मीरा के साथ नरेश सिर्फ पंद्रह मिनट का समय बिताता था वह भी क्लब जाते समय । पति की खुशी के लिए मीरा गाड़ी चलाना सीखती है , नरेश की पसंदीदा खेल ब्रिज सीखने की कोशिश करती है । लेकिन नरेश में कोई बदलाव नहीं आता। नरेश की तरफ से इतनी अवहेलना होने पर भी मीरा की ओर से नरेश के लिए अपने प्यार में कोई कमी नहीं थी। मीरा खुद कहती है- "एक मैं ही हूँ जो पति के दफ्तर से घर लौटने पर उसके चेहरे से अपनी निगाहें हटा नहीं पाती । एक मैं ही हूँ जो प्याले में केतली से चाय डालते हुए या नमकीन की प्लेटें उसकी तरफ बढ़ाते हुए उसके चेहरे पर आ रहे हर भाव को पढ़ने की कोशिश करती रहती हूँ। नतीजा यह होता है कि कभी मैं चाय छलका देती

हूँ तो कभी नमकीन छिटका देती हूँ और फिर अगर इस पर उसके माथे पर शिकन उभर आती है तो मैं भीतर ही भीतर मार लेती हूँ। एक मैं ही हूँ। बस, और कोई औरत यह बेवकूफी नहीं करती"।[7]

नरेश ने मीरा से कभी गहराई से प्यार नहीं किया था। वह अपने तौर तरीका नहीं बदलता। मीरा नरेश को ब्रिज से दूर रखने का भरसक प्रयत्न करती है। लेकिन असफल निकलती है। नरेश जब कभी ब्रिज में जीतकर आता है तो मीरा से प्यार से बर्ताव करता है और जब हार जाता है तो वह भूखे भेड़िए की तरह उस पर टूट पड़ता है। दिल की भड़ास उसे डाँटकर या पीटकर निकालता था। मीरा कहती है -"अपनी हार का मुआवजा वह मेरे बदन के सिवा वसूल करता भी कहां से?"[8] वास्तव में मीरा दब्बू और कमज़ोर औरत है ।उसमें इस घुटन से बाहर निकलने की क्षमता नहीं है। मीरा को यह सब कुछ सहने के लिए बाध्य करनेवाली सामाजिक विषमता ही है। पुरुष इस व्यवस्था की नस-नस को पहचानता है। औरत पति का साथ नहीं छोड़ सकती, हर हालत में घर की चौखट वह नहीं लांघ सकती ,यह उसे विश्वास है। इसलिए घर में पत्नी की परवाह करने की जरूरत उसने कभी महसूस ही नहीं की।

दांपत्य जीवन का आधार प्रेम ही होता है। नरेश और मीरा के बीच तनाव जरूर है लेकिन यह तनाव सिर्फ मीरा महसूस करती है, नरेश नहीं | मीरा को उसकी ज़रूरत है, नरेश को उसकी जरूरत नहीं है। मीरा महसूस करती है कि -"मुझे लगता एहसान होने की भावना से प्रेरित हो, वह एक ऊँचाई से मेरी और झुकता है और मुझे प्यार करके अलग हो जाता है। मेरी असंतुष्ट देह पिटी सी पड़ी रहती है और मैं अगले दिन के अपने अपमान की योजना बनाने लगती हूँ"।[9] इतना सब कुछ होने के बावजूद वह नरेश से प्यार करने में कोई कसर नहीं रखती है। नरेश को रिझाने के लिए वह कभी शुद्ध भारतीय नारी की तरह बन ढनकर आती है। वह कहती है "मेरे पति नरेश को यह रूप बहुत पसंद है। उसे इसमें एक ठोस घरेलूपन दिखाई देता है , जो उसके स्वामित्व और मेरे पालतूपन का मुहर लगाता है। अन्य व्यावसायिक ट्रेडमार्को की तरह यह भी स्थायित्व और स्थिरता प्रदान करता है" ।[10] मीरा और नरेश का रिश्ता इतना दयनीय है कि पति-पत्नी का रिश्ता स्वामी और दास का जैसा हो जाता है। लेकिन मीरा इतनी समर्पिता है कि "पति की खुशी- नाखुशी आकर्षण-विकर्षण या रूचि उदासीनता जैसे मेरे लिए ज़िदगी और मौत का सवाल बन जाती है"।[11]

मृदुला गर्ग ने 'तुक' कहानी के ज़रिए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि अंदरूनी तौर से स्त्री को एक उपभोग की वस्तु ही मानते है। पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री को उपभोग की वस्तु बना दी है। शादी के बाद स्त्री को गुलाम बनकर जीना पड़ता है।"विवाह एक ऐसी संस्था है जिसमें आज भी दास प्रथा जीवित है"।[12] मीरा शादी के संबंध में बहुत सपने देखती है, लेकिन सारे के सारे सपने धरे के धरे रह जाते हैं। उसे अपने पति की इच्छा के अनुसार जीना पड़ता है। एक तरह से वह गुलाम ही थी। यह कहानी मीरा की घुटन, तनाव और बहुत कुछ सहकर भी दांपत्य को निभाने की वृत्ति और उपेक्षा करनेवाले पति के प्रति प्यार जताने की मज़बूरी को एक साथ व्यक्त करती है। प्रस्तुत कहानी 'तुक' के ज़रिए लेखिका ने आधुनिक विवाहोत्तर दांपत्य जीवन की सच्चाई का ही पर्दाफाश किया है।

संदर्भ-

1. 'चुकते नहीं सवाल' 'कहानी में नारी चेतना' - मृदुला गर्ग kaa लेख, पृ-53; सामयिक प्रकाशन; 2019।

2. चर्चित कहानियाँ--मृदुला गर्ग, पृ—111, सामयिक प्रकाशन; 2005।

3. वही—पृ—111 4. वही —पृ—119 -120

5. वही —पृ—111 6. वही —पृ—113

7. वही –पृ—112 8. वही – पृ–116

9. वही - पृ-115 10. वही – पृ-116
11. वही - पृ --111-112
12. श्रृंखला की कड़ियां -- महादेवी वर्मा –पृ—9; राधाकृष्ण प्रकाशन, 1942।

◆ सहायक प्रोफेसर और अध्यक्षा
हिन्दी विभाग
सरकारी संस्कृत कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में स्त्री-संघर्ष

◆ अफीफा फातिमा शेक , ◈ डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन

शोध-सार : नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है। समाज की श्रेष्ठता नारी की स्थिति पर निर्भर है। आज भी भारतीय नारी अनेकानेक समस्याओं में जकड़ी हुई है। सुरक्षा के नाम पर आज भी नारी को बचपन में माता-पिता के अधीन, जवानी में पति के अधीन, और बुढ़ापे में संतानों के अधीन उसे रहना पड़ रहा है। परिणामस्वरूप नारी जीवन अभिशाप-ग्रस्त हो गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी-पुरुष की समानता की भावना समाज द्वारा स्वीकार की जा चुकी है। फिर भी भारतीय नारी पढ़-लिखकर अपने स्वतंत्र एवं मानवीय अधिकारों से वंछित है।

बीज शब्द : नारी, आधुनिक समाज, परतंत्रता, यौन शोषण, वैश्य स्त्री संघर्ष, कामकाजी स्त्री शोषण, विधवा स्त्री संघर्ष

मूल आलेख : नारी आदिकाल से ही सेवा, त्याग व शक्ति का प्रतीक रही है। वह आचरण में आगे एवं सहिष्णुता की मूर्ति मानी जाती है। परंतु कालांतर में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति में भी परिवर्तन आया है। आज स्त्री किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं है। भारत पुरुष प्रधान देश है। इस कारण सामान्य महिलाएँ ही नहीं, अपितु शिक्षित एवं आधुनिक महिलाओं को भी पुरुष की अधीनस्थता स्वीकार करनी पड़ती है।

"आधुनिक समाज में शिक्षित और समर्थ नारी शोषण का शिकार हो रही है। इस शोषण का कारण मनुष्य के अहंकारवादी एवं प्रभुत्व प्रवृत्ति है जिससे वह आज भी मुक्त नहीं हो पायी है। समाज में नारी सर्वाधिक पीड़ित एवं शोषित है। पुरुषों का दुर्व्यवहार, कामवृत्ति, स्वार्थी भावना, नारी का दुर्बल व्यक्तित्व आदि नारी शोषण के मुख्य कारण हैं।"[1]

हिंदी कहानी की दुनिया में मनीषा कुलश्रेष्ठ का नाम प्रसिद्ध माना जाता है। मनीषा जी ने अपनी कहानियों में स्त्री की हर स्थिति का वर्णन किया है। किस प्रकार स्त्री सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से शोषण का शिकार हो रही है, किस प्रकार स्त्री के आत्मसम्मान और स्वाभिमान को चोटिल किया गया है उसका वर्णन लेखिका ने अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है। स्त्री की मनोदशा को परखते हुए मनीषा जी ने अपनी कहानियों में बेमेल विवाह, आर्थिक मज़बूरी, विधवा स्त्रियों का शोषण आदि का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किया है।

'कठपुतलियाँ' कहानी में बेमेल विवाह का वर्णन हुआ है। रामकिशन एवं सुगना कहानी के मुख्य पात्र हैं। जीवन में आये उतार-चढ़ाव कैसे पूरी ज़िंदगी को बदल डालते हैं, कैसे एक स्त्री को कठपुतली की भाँति नचाते हैं-इनका वर्णन किया गया है। पहले सुगना का ब्याह जोगिंदर से तय होता है, मगर सुगना के पिता के गुजर जाने के बाद अधिक दहेज माँगने के कारण रिश्ता टूट जाता है। सुगना तेरह साल की है जबकि अपाहिज रामकिशन तीस साल का विधुर और दो बच्चों का पिता है। यह बेमेल विवाह सुगना के

जीवन में तूफान ले आता है।

स्त्री स्वतंत्र होने के लिए उसे शिक्षित और स्वावलम्बी बनना ज़रुरी है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'सियामीज़' में आर्थिक दृष्टि से परतंत्र स्त्री को प्रताड़ित किया जाता है। कहानी की पात्र मनासी कहती है "मैं ने देखा है, आदमी हमेशा चाहता है कि औरत मूर्खा-सी बनी उस पर निर्भर रहे।"[2] स्त्री को नौकरी और आर्थिक दृष्टि से सक्षम रहना ही परतंत्रता से निकलने का सबसे बड़ा माध्यम है।

मनीषा जी की 'समुद्री घोड़ा' कहानी में आदिवासी लड़की का गैंग रेप का वर्णन हुआ है। डॉ. इसाक कहता है कि "वह लड़की ह्यूमन ट्रैफिकिंग में अनाम और लापता हुई थी। उसका गैंग रेप हुआ था। उसके जननांग बुरी तरह क्षत-विक्षत थे। वह देखने में आदिवासी लड़की थी। गोदना से भरी देह।वह पंद्रह दिन हमारे आई सी यू में कोमा में रही थी।"[3] भारत में दिन-ब-दिन गैंग रेप के आरोप बढ़ते ही जा रहे हैं। लोगों की शिक्षा का स्तर बढ़ने के बावजूद भारतीय समाज के लिए यह समस्या गंभीर तथा जटिल बन गयी है। महिलाओं के विरुद्ध होती हिंसा के पीछे मुख्य कारण है पुरुष प्रधान सोच।

मनीषा जी ने 'अवक्षेप' कहानी में 'आदिवासी महिला छात्रावास' में रहनेवाली छात्राओं की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। इस कहानी में आदिवासी गर्ल्स हॉस्टल के अंदर चल रही घिनौनी व्यवस्था का चेहरा उभरकर सामने आता है। हॉस्टल की मेट्रन लड़कियों को बड़े अधिकारियों के साथ यौन शोषण करवाती है। इस बात की पुष्टि 'अवक्षेप' कहानी की आदिवासी पात्र बेनु के माध्यम से होती है।

'कालिंदी' कहानी में रेड लाइट एरिया का वर्णन हुआ है। चंद पैसों के कारण प्रेमी या पति अपनी ही लड़कियों को रेड लाइट एरिया में बेच देते हैं। दीपू कहता है "मध्यम वर्ग के लोग अपनी औरतों से इकलाएँ तीन मंजिला पीली इमारत में कस्टमर बनकर जाते थे जहाँ अनैतिक सिर खोले हुए घूमती थी।"[4] कालिंदी वेश्याओं का वर्णन करते हुए कहती है कि "माँ देखती मां के बदन पर तरह-तरह के निशान। सिगरेट के जले सलेटी निशान, नीले-जामुनी निशान और बहुत बुरी तरह डर जाती।"[5] लेखिका ने 'कालिंदी' कहानी के माध्यम से वेश्या स्त्रियों के संघर्ष का वर्णन किया है।

'मास्टरनी' कहानी में कामकाजी स्त्री के शोषण का वर्णन हुआ है। "हमारे समाज में जब एक लड़की शादी के बाद अपना मायका छोड़कर ससुराल में कदम रखती है तो उसके दिल में उम्मीद होती है कि यहाँ सब उसे दिल से अपनायेंगे और अपने परिवार का हिस्सा समझेंगे। ज़्यादातर घरों में मेहमानों के विदा होते ही नयी बहू को उसके कर्तव्यों, ज़िम्मेदारियों और फर्ज की टोकरी पकड़ा दी जाती है। लेकिन उसके हक और अधिकारों का क्या? उसके बारे में किसी ससुरालवाले ने बताया या गिनाया।"[6] 'मास्टरनी' कहानी की नायिका सुषमा जब शादी के बाद ससुराल आती है तो उसकी सास उसे घर का काम संभालने को बोलती है और नौकरी करने के लिए भी कहती है। नौकरी करते हुए घर और बच्चों को संभालना सुषमा के लिए मुश्किल हो जाता है। पति उसकी मदद न करके उसको ताना मारता रहता है। दिन-रात उससे लड़ता रहता है। सास के और पति के तानों को झेलते हुए वह संघर्ष का सामना करती है।

'खरपतवार' कहानी में डेनियल नामक पात्र शादीशुदा होने के बावजूद एंजेला के साथ ज़बरदस्ती यौन संबंध रखता है। एंजेला एक अनाथ और गरीब लड़की है । जब वह गर्भवती बन जाती है तब उसके पास खाने के लिए भी पैसा नहीं होता। डेनियल उसको अपनाने की झूठी तसल्ली देता रहता है। अंत में एंजेला भूख और खून की कमी के कारण मर जाती है। सदियों से नारी जितनी पूजी जा रही है उतनी ही बोझ तले दबती भी जा रही है। नारी के शोषण के तरीके संदर्भ के अनुसार और समय के अनुसार बदलते रहते हैं। पर हर मोड़ पर नारी की विवशता ही दृष्टिगोचर होती है। कभी वह समाज से, तो कभी वह परिवार के अन्य सदस्यों से पीड़ित होती है।

'कुरजा' कहानी में एक विधवा स्त्री के संघर्ष का वर्णन हुआ है। कुरजा को गाँववाले डायन मानते थे। उसको गाँव में आना मना था। इसलिए वह गाँव के बाहर जंगल में अकेली अपने बच्चे के साथ रहती

थी। गाँव में जो भी दुर्घटना होती तो गाँव के लोग कुरजा को ज़िम्मेदार मानकर उसे और उसके बच्चे को मारते थे। एक बार ठाकुर के घर लड़का हुआ। कुरजा देखने के लिए चली जाती है। लड़का जैसे ही रोने लगा तो कुरजा को ज़िम्मेदार मानकर उसे सौ जूते मारने का आदेश ठाकुर देता है। अंधविश्वास के कारण गाँववाले कुरजा का शोषण करते रहते हैं।

निष्कर्ष : आधुनिक हिंदी साहित्य जगत की उभरती युवा कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ जी का सृजनात्मक साहित्य हिंदी की अनमोल निधि है। हिंदी कथा साहित्य की वे सशक्त लेखिका हैं।21 वीं सदी में हम आधुनिक समाज, आधुनिक भावबोध और आधुनिक विचारधारा की बात तो करते हैं। पर बात जब स्त्री की आती है, स्त्री देह, स्त्री-मनोवेग, स्त्री अस्मिता की आती है तब हम पाते हैं कि स्त्री की स्थिति, आज भी प्राचीन रूढ़िवादी मानसिकता से ग्रसित ही है। कहीं न कहीं आज भी उसे देह की आज़ादी नहीं मिली है और वह उस कठपुतली की भाँति है जिसकी डोर समाज के हाथों में है। मनीषा कुलश्रेष्ठ जी अपनी कहानियों में सामाजिक स्तर पर स्त्री मन, स्त्री शोषण को बखूबी चित्रित करती हैं। उनके द्वारा लिखित कहानियों में स्त्रियाँ अपने अस्तित्व को लेकर सवाल करती नज़र आती हैं।

संदर्भ सूची :

1. मंजुलता सिंह,'हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण 1970, पृ.22
2. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'रंग-रूप,रस-गंध-2', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2022, पृ.461
3. वही, पृ.683
4. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'रंग-रूप,रस-गंध-1', सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृ.302
5. वही, पृ.312
6. https://hindi.momspresso.com

◆ शोधार्थी, वेल्स इंस्टीट्यूट आफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी एडवांस स्टडीज (विस्टास), पल्लवरम, चेन्नई।
afeefasaboor@gmail.com, 9710623178
◈ असिस्टेंट प्रोफेसर एंड हेड, हिन्दी विभाग, वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी एडवांस स्टडीज (विस्टास), पल्लवरम, चेन्नई।
poornima.hindi@velsuniv.ac.in, 9884026296

मानवतावादी कवि धूमिल

◆ डॉ .माजिदा एम

सारांश- मानवतावादी विचारधारा में मानव के हित या कल्याण को सबसे अधिक प्रमुखता दिया जाता है।इसके अनुसार संसार की समस्त प्रगति का केंद्र मनुष्य है। दीन-दुखियों की सेवा करना,दुख के कारणों पर विचार करना, उसका समाधान ढूँढ़ निकालना, व्यक्ति की असीम शक्ति को जगाना, मनुष्य की गरिमा पर विश्वास करना, मानव जाति की एकता तथा अखंड़ता पर बल देना आदि मानवतावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। धूमिलजी ने अपनी कविताओं के ज़रिए भारत के दीन-हीन साधारण लोगों से सहानुभूति एवं पक्षधरता दिखायी है। उनके अनुसार मानव जीवन की सभी समस्याओं की जड़ भूख है। अशिक्षा, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, समझौते की भावना, नियतिवाद आदि जीवन को दूभर बनानेवाली हर एक समस्या का चित्रण धूमिलजी ने अपनी कविताओं में किया है।मानवीय हितों को बनाए रखने का प्रयास धूमिल की रचनाओं में हम देख सकते हैं ।

बीज शब्द –मानवतावाद, सेवा, दुख के कारण,

समाधान, असीम शक्ति,विश्व कल्याण ।

मानवतावाद एक मानव केंद्रित विचारधारा है, जिसके अनुसार संसार की समस्त प्रगति का केंद्र मनुष्य है।मनुष्य के सर्वांगीण विकास में उसकी भौतिक प्रगति के साथ नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति भी आवश्यक है। इसके लिए व्यक्ति को अपनी स्वार्थ चिंता छोड़कर समाज के कल्याण के लिए कार्यरत रहना चाहिए। उसका समस्त कार्य समाजोन्मुख होना चाहिए।

इस विचारधारा में मानव के हित या कल्याण को सबसे प्रमुखता दी गयी है। इसके अनुसार मनुष्य की सेवा करना सबसे बड़ा धर्म है। मानव को संकीर्ण भावनाओं को त्याग कर दूसरों के हित के लिए कार्य करना चाहिए।भूतपूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहर-लाल नेहरू के शब्दों में ''परसेवा,परसहायता और परहितार्थ कर्म करना ही पूजा है और यही हमारा धर्म है, यही हमारी इंसानियत है।''दीन-दुखियों की सेवा करना, दुख के कारणों पर विचार करना, उसका समाधान ढूँढ निकालना, व्यक्ति की असीम शक्ति को जगाना, मनुष्य की गरिमा पर विश्वास करना, मानव जाति की एकता तथा अखंड़ता पर बल देना आदि मानवतावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। सुदामा पाण्डेय धूमिल की रचनाओं में हम इन सारी प्रवृत्तियों का दर्शन कर सकते हैं ।

दीन दुखियों की सेवा

'विरोध एवं संघर्ष के कवि' धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से भारत केदीन हीन साधारण लोगों से सहानुभूतिएवं पक्षधरता दिखाई है। किसान जीवन के सभी समस्याओं को समझने एवं उसे वाणी देने के कारण ही वे 'किसान कवि' के नाम से विख्यात हुए। अग्निधर्मीव्यक्तित्ववाले कवि धूमिलजी ने भूख को मानव जीवन की सबसे बड़ी समस्या मानी। कितनी विडंबना की बात है कि अन्न उगानेवाले किसान को भी दो वक्त की रोटी के लिए दर-दर भटकना पड़ता है। मानव जीवन की सभी समस्याओं की जड़ भूख है। भूख से पीड़ित परिवार का सजीव चित्र 'आज मैं लड़ रहा हूँ' कविता में मिलता है।

" बच्चे भूखे हैं:
माँ के चेहरे पत्थर,
पिता जैसे काठः अपनी ही आग में
जले हैं ज्यों सारा घर।" [1]

धूमिल ने स्वयं अपने जीवन में भूख, दरिद्रता एवं अभाव का सामना किया था। उनके पिता बचपन में ही गुज़र गए थे और धनाभाव के कारण उन्हें पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी। उनके घर की आर्थिक स्थिति अत्यंत कमज़ोर होने के कारण बचपन से ही उन्हें आजीविका के लिए विभिन्न प्रकार का कठिन काम करना पड़ा था। नीलम सिंह ने लिखा है "एक साधारण किसान परिवार में उत्पन्न होने के कारण धूमिल ने गरीबी को केवल देखा ही नहीं, किंतु स्वयं भोगा भी था।"[2] जीवन के इन कठोर वास्तविकतओं से वाकिफ होने के कारण आम जनता से जो हमदर्दी उन्होंने दिखाई है उसमें सच्चाई की मात्रा अधिक है।

दुख के कारणों की खोज

अथक परिश्रम करने पर भी आम आदमी अपने जीवन के लिए आवश्यक ज़रूरी चीज़ें इकट्ठा नहीं कर पाते। धूमिल ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इसका असली कारण खोजने का प्रयास किया है। वास्तव में भारतीय नागरिकों की दुर्दशा का कारण उनके शोषण करनेवाले राजनेता ही हैं। भारत की आर्थिक दशा में जो सुधार आया उसका फायदा साधारण जनता तक नहीं पहुँचा। एक ओर आम आदमी भूख से तरस खा रहा है, तो दूसरी ओर राजनेता विलासिता में डूबा हुआ है।

"उन्हें तुम्हारी भूख पर भरोसा था
सबसे पहले उन्होंने एक भाषा तैयार की
जो तुम्हें न्यायालय सेलेकर नींद से पहले की-
प्रार्थना तक, ग़लत रास्तों पर डालती थी।[3]

कहने के लिए तो भारत संसार का सबसे बड़ा प्रजातंत्र राष्ट्र है। लेकिन वास्तव में प्रजातंत्र के नाम पर यहाँ किसानों एवं मजदूरों का शोषण हो रहा है। राजनेता आम आदमी की समस्याओं का समाधान ढूँढने के बजाय अपनी स्वार्थ-सिद्धि के

उपाय ढूँढते रहते हैं। किसान के जीवन-संघर्ष को आसान बनाने के लिए पंचवर्षीय योजना जैसे अनेक कार्यक्रम बनाये गये हैं। लेकिन उसका लाभ जनता तक नहीं पहुँचता। या तो मात्र कागज़ी नियम रह जाते हैं या अफसर या राजनेता उसका अनुचित लाभ उठाते हैं। जब आम आदमी दाने दाने के लिए तरसते हैं तो राजनेता संसद में बैठकर कागज़ी कार्रवाई करते रहते हैं।वे समस्या के समाधान के लिए कोई कदम नहीं उठाते। इसका जीता जागता चित्रण 'रोटियों का शहर' कविता में मिलता है। जिस ईमानदारी और व्यंग्य के साथ उन्होंने राजनेताओं की संवेदनशून्यता को प्रस्तुत किया है, वह पाठकों के मर्म को छूती है।

"डफले पर बजती है भूख पैर में घण्टियाँ
दुपहर की आँच में सिंकती हैं
रोटियाँ
मज़ा करो
तुम अपनी संसद के साथ
हम अपनी सांसत के साथ " [4]

स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी देश अकाल और भुखमरी से पीड़ित हैं।धूमिल ने अपनी कविता में इसका अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। उनके अनुसार संसद इसका हल निकालने के बदले दूसरे देशों की भुखमरी के किस्से अखबारों में छपाकर लोगों का ध्यान हटाने का प्रयास करते हैं।

"भूख से अब तक पैंतीस आदमी मर चुके हैं।
अपना निवाला गले से नीचे उतारते हुए
पत्नी की मुस्कुराहट को हल्का- सा धक्का देते है।" [5]

दुख का समाधान ढूँढना

कवि किसी न किसी तरह रोटी की समस्या का हल ढूँढना चाहते हैं। उन्होंने इस समस्या को जड़ से पकड़ने का प्रयास किया तो उन्हें मालूम हो गया कि इससे समाज को मुक्त करना असंभव है।'प्रवेश पत्र' नामक कविता में कवि ने भूख की समस्या का समाधान न होने के बारे में अपनी व्याकुलता व्यक्त की है।

"यह देश बहुत बड़ा है
तुम अपनी भूख से इसे
भर नहीं सकते।" [6]

कवि अकेले इसके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता, तो भी भारत के सभी नागरिक मिलकर इस समस्या का समाधान निकाल सकते हैं। इसके लिए व्यवस्था विरोधी ताकतों के विरुद्ध एक साथ खड़ा होना चाहिए। इसका असली कारण वही राजनेता है जो हमेशा अपने दायित्व से पलायन करते हैं। राजनेताओं के दोहरे व्यक्तित्व और उनकी मूल्यहीनता से आम जनता को परिचित कराने का प्रयास धूमिल ने अपनी रचनाओं में किया है। 'रोटी औरसंसद' कविता का उदाहरण द्रष्टव्यय है।

"एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ़ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ—
'यह तीसरा आदमी कौन है?'
मेरे देश की संसद मौन है।" [7]

भारतीय समाज में धर्म का प्रभाव बहुत अधिक है। असली धर्म को प्रधानता देने के बदले अंधविश्वास को बढ़ावा देने में धर्म का इस्तेमाल किया जाता है। चंद लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए धर्म का उपयोग करते हैं। धूमिल धर्म के नाम पर समाज में अंधविश्वास, रूढियाँ, धर्मांधता, सांप्रदायिकता आदि को बढ़ावा देने के विरुद्ध थे। वे इन सबको समाज के लिए हानिकारक कीड़े मानते थे।

"उसमें जाति और धर्म और संप्रदाय और
पेशा और पूँजी के असंख्य कीड़े
बिलबिला रहे हैं और अंधकार में
डूबी हुई पृथ्वी " [8]

भूख, अशिक्षा, रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता, अंधविश्वास, समझौते की भावना, शांतिप्रियता, नियतिवाद आदि किसान के जीवन को दूभर बनानेवाली हर एक समस्या का चित्रण धूमिल ने

अपनी कविताओं में किया है। किसान को चेतावनी देकर एक शोषणहीन समाज की स्थापना करना उनका लक्ष्य था। उनके अनुसार किसान एवं मज़दूर को चुपचाप अत्याचार सहने के बदले अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। उन्हें किसी दूसरे मसीहा से मदद की प्रतीक्षा किए बिना क्रांति का मार्ग अपनाते हुए व्यवस्था को बदलने का प्रयास करना चाहिए।वे एक वर्गहीन समाज की स्थापना का सपना देखते थे, जहाँ पूरी जनता शोषण से मुक्त हो।

व्यक्ति की असीम शक्ति पर विश्वास

आम जनता की अपार शक्ति पर धूमिल को पूरा भरोसा था। अकेले एक व्यक्ति व्यवस्था को बदल नहीं सकते। लेकिन जब हम एक साथ मिलकर इन शोषकों के खिलाफ खड़े हो जाएँगे तो ज़रूर सफलता प्राप्त कर पाएँगे। स्वार्थी राजनेता थोड़ी सी सुविधाएँ देकर किसानों एवं मजदूरों को लुभाते हैं। इसके लोभ में अपने जोश को ठंडा किये बिना साहस एवं निर्भीकता से हमें अपने विरोध को व्यक्त करना चाहिए। चालाक राजनीतिज्ञ सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले के दमन के लिए विभिन्न तरीके अपनाते हैं। आज जिस प्रकार अपने समाज के लिए आवाज़ उठानेवाले व्यक्ति को 'देशद्रोही' का दर्जा दिया जाता है इसके बारे में दूरदर्शी धूमिल पहले से ही अंदाज़ा लगा चुके थे।'देशभक्त' और 'देशद्रोही' शब्दों की जो व्याख्या आज के पथभ्रष्ट राजनेता दे रहे हैं उसी के संबंध में धूमिल ने चेतावनी दी थी -

"देश की मिट्टी को आँख की
पुतली समझता है
वर्ना रोटी के टुकड़े पर
किसी भी भाषा में देश का नाम लिखकर।
खिला देने से कोई देशभक्त नहीं होता" [9]

धूमिल ने समाज तथा व्यक्ति के संबंध को नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया।वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जहाँ लोग सुख, शांति और चैन से जी सके। वे समाज में समता लाना चाहते थे। उनके अनुसार लोगों के बीच एक दूसरे के प्रति आदर भाव एवं सहयोग की भावना अत्यंत आवश्यक है। उनका लक्ष्य व्यक्ति को सुखी बनाना था जिससे कि वह स्वयं प्रगति कर सके और दूसरों को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर होने का प्रोत्साहन दे सके।इस प्रकार हर एक मानव एक दूसरे की सहायता करेगा तो पूरी मानव जाति अपने जीवन को अर्थ और आकार देने में सक्षम हो जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. धूमिल- कल सुनना मुझे (आज मैं लड़ रहा हूँ) पृ.98, 1976, वाणी प्रकाशन, वारणासी।
2. नीलम सिंह- धूमिल की कविता में विरोध और संघर्ष पृ.28, राधाकृष्ण प्रकाशन।
3. धूमिल- संसद से सड़क तक (प्रौढ़ शिक्षा) पृ. 47, 1972, वाणी प्रकाशन।
4. धूमिल- संसद से सड़क तक (रोटियों का शहर) पृ.47, वाणी प्रकाशन।
5. धूमिल- सुदामा पांडे का प्रजातंत्र (सूखे की छायाएँ।
6. और एक शिशिर संध्या) पृ.36, 1984, वाणी प्रकाशन।
7. धूमिल- कल सुनना मुझे (प्रवेश पत्र) पृ. 102, 1977 वाणी प्रकाशन ।
8. धूमिल- कल सुनना मुझे (रोटी और संसद) पृ. 66, वाणी प्रकाशन।
9. धूमिल- संसद से सड़क तक (पटकथा) पृ. 99, 1972 वाणी प्रकाशन।

◆ सहायक आचार्य
सरकारी महिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम, केरल-695014
ई-मेल: majishyam@gmail.com
Ph:9745524215

हिन्दी का वैश्विक महत्व

◆ डॉ. प्रीति के

हिन्दी भारत की राष्ट्रीय एकता की महत्वपूर्ण कड़ी है। हमारा देश भारत अनेक भाषाओं-संस्कृतियों की जननी है । विविधता से भरे हमारे देश को एकता के सूत्र में पिरोने में हिंदी ने बड़ी भूमिका निभायी है । भारत के कोने-कोने में इसे समझने और बोलनेवाले हैं । चाहे वह दक्षिण भारत के लोग हो या पूर्वोत्तर के लोग, हिंदी सभी को एक सूत्र में बाँधे रखने का कार्य करती है। इसके मूल में विश्व की प्राचीनतम समृद्ध भाषा संस्कृत है और साथ में तमाम भारतीय भाषाएँ उसकी ताकत हैं। भारतीय भाषाओं की बड़ी बहन होने के नाते हिंदी विभिन्न भाषाओं के उपयोगी और प्रचलित शब्दों को अपने में समाहित करके सही मायने में भारत की संपर्क भाषा होने की भूमिका निभा रही है । हिंदी के महत्व रविंद्र नाथ टैगोर ने सुंदर रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

"भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी"

हिंदी ने देश के स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान सभी देशवासियों को एकजुट करके देश की आज़ादी की लड़ाई में निर्णायक भूमिका निभायी थी। इस पर लिखित मैथिलीशरण गुप्त की कविता उल्लेखनीय है –

हिंदी का उद्देश्य यही है /भारत एक रहे अविभाज्य
यों तो रूस और अमेरिका /जितना है उसका जन राज्य।

हमारे देश के संतों, समाज सुधारकों और राष्ट्र नायकों ने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी को ही अपनाया, क्योंकि यही एक भाषा है जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक, राजस्थान से असम तक समान रूप से बोली और समझी जाती है। हिंदी ही एकमात्र भाषा है जो समस्त भारतीयों को एकता के सूत्र में जोड़ने का कार्य करती है । इसे राजभाषा का दर्जा संविधान से मिल पाया है । लेकिन व्यवहारिक रूप में राष्ट्रभाषा है, क्योंकि यह समूचे राष्ट्र में बोली और समझी जाती है। हिंदी को जानने, समझने और बोलनेवाले देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं । ये लोग चाहे विशुद्ध हिंदी न जानते हों व्याकरण की भूलें करते हों, पर बोलते हिंदी ही हैं और उसी में अपने भाव व्यक्त करते हैं और समझते हैं। हिंदी के सूत्र के सहारे कोई भी व्यक्ति देश के एक कोने से दूसरे कोने तक जा सकता है और अपना काम चला सकता है। देश में फैली हुई अनेक भाषाओं और संस्कृतियों के बीच यदि भारतीय जीवन की उदारता एवं एकात्मकता किसी एक भाषा में दिखाई देती हैं तो वह हिंदी में ही है। 'हिन्दी दिवस' प्रत्येक वर्ष चौदह सितंबर को मनाया जाता है । चौदह सितंबर उन्नीस सौ उनचास को संविधान सभा ने हिंदी को संघ सरकार की राजभाषा के रूप में सीकृति दी। भारतीय संविधान के भाग सत्रह, अध्याय एक के अनुच्छेद तीन सौ तैंतालीस में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार भारतीय संघ की राजभाषा 'हिंदी' है । इसी महत्वपूर्ण निर्णय के महत्व को प्रतिपादित करने तथा हिंदी को हर क्षेत्र में प्रसारित करने के लिए 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' के अनुरोध पर उन्नीस सौ तिरपन से पूरे भारत में चौदह सितंबर को प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद स्थापित करवाने के लिए काका कालेलकर, मैथिलीशरण गुप्त, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, सेठ गोविंद दास, राजेंद्र सिंह जैसे महात्माओं ने अथक प्रयास किए। 14 सितंबर 1949 को हिंदी के पुरोधा व्यौहार राजेंद्र सिंह का पचासवाँ जन्मदिन भी था, जिन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए लंबा संघर्ष किया ।

खड़ीबोली हिंदी का विकास लगभग 1000 ईसवीं के आसपास 'शौरसेनी अपभ्रंश' से हुआ। तब से लेकर आज तक हिंदी अपनी पाँच उपभाषाओं, याने पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी,राजस्थानी ,बिहारी ,पहाड़ी तथा सोलह बोलियों की सहायता से विकसित हुई। आज हिंदी की गणना विश्व की प्रमुख भाषाओं में होती है । हिंदी भारत संघ की राजभाषा होने के साथ ही ग्यारह राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों की प्रमुख

भाषा है । संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल अन्य इक्कीस भाषाओं के साथ हिंदी का एक विशेष स्थान है ।

आज एक साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी बहुत संपन्न है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में अनेक साहित्यकारों-लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । खड़ीबोली हिंदी के प्रथम रचनाकार अमीर खुसरो, उनके लेखन तथा बहुआयामी व्यक्तित्व मील के पत्थर हैं । उनकी प्रसिद्ध पहेली है –

एक थाल मोती से भरा
सबके सिर पर औंधा धरा
चारों ओर वह थाली फिरे
मोती उससे एक न मिले । (उत्तर : आकाश) 1

कबीरदास,तुलसीदास,जायसी,रैदास,भारतेंदु हरिश्चंद्र ,महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल जी,मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद ,जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा,अज्ञेय, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, फणीश्वर नाथ रेणु, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अरुण कमल, कुंवर नारायण, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शंकर शेष जैसे अनेक प्रमुख साहित्यकार हिंदी साहित्य की धरोहर हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निज भाषा अर्थात् हिंदी भाषा के महत्व पर बल देकर इस प्रकार बताया था –

‘ निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल । ‘ 2

उनकी राय में अपनी भाषा से याने हिंदी से ही हमारी उन्नति संभव है, क्योंकि यही हमारी सारी उन्नतियों का मूल आधार है।

हिंदी वास्तव में करोड़ों की जनभाषा है, न केवल इस देश में वरन् बाहर के देशों में भी। घर-परिवार, खेत,खलिहान, बाज़ार, कारोबार, फिल्म, पत्रकारिता, साहित्य यानी जीवन के विविध पहलुओं में जीवंत व गतिमान है। इसके बिना सामाजिक जीवन की कल्पना संभव नहीं है। एक बहुत बड़ी चुनौती राजभाषा रूपी हिंदी और जन भाषा हिंदी के बीच की खाई को पाटना है। इस दिशा में बहुत कुछ हुआ भी है बहुत कुछ होना बाकी है। भाषा जो जनों में चल रही है, वही शासन-प्रशासन में चलेगी, अन्यथा अप्रासंगिक व व्यवहार से कट जाएगी। मुख्य बात यह है कि हमें अपने आप को हिंदी का जीवंत सेवक समझना होगा और हिंदी के स्वाभिमान का प्रहरी बनना होगा। हमें राजभाषा हिंदी को मूल कार्यों की जननी के रूप में देखना होगा और अमल में लाना होगा।

आज हिंदी विश्व भर में सबसे ज़्यादा बोली जानेवाली तीसरी भाषा है । देश-विदेश में हिंदी को जानने और समझनेवालों की संख्या बढ़ रही है। विश्व भर में हिंदी भाषी करीब अस्सी करोड़ हैं। विश्व के कई विद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बडे केन्द्रों में अमेरिका, ब्रिटेन, न्यूज़ीलैंड, जर्मनी, कनाडा, त्रिनिदाद, फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस आदि अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी के पाठ-पठन होते हैं। साहित्य, विज्ञान,सूचना प्रौद्योगिकी, सिनेमा ,अनुवाद सभी जगत में हिंदी का उपयोग बढ़ रहा है । तकनीकी, प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक साहित्य का हिंदी में लेखन एवं प्रकाशन एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें गत दशकों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है । इससे हिंदी के प्रभाव, क्षेत्र विस्तार एवं उन्नति हुई है । आज कंप्यूटर क्रांति में भी हिंदी का तेज़ी से प्रचार हो रहा है । इंटरनेट की दुनिया में भी जैसे वेबसाइट, ब्लॉग, ईमेल, एस एम एस आदि में इसका विकास तेज़ी से बढ़ रहा है । इंटरनेट का समावेश टंकण के नए फॉन्ट, और फेसबुक के अनन्त विश्व को अनन्य आयाम प्रदान कर चुका है। विगत कुछ सालों से अनेक हिंदी ई-टूल्स विकसित किए गए हैं, जिससे कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करना अत्यंत सरल हो गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के मौजूदा दौर में हमें विभिन्न ई-टूल्स, जैसे-यूनिकोड ,हिंदी की बोर्ड, लीला सॉफ्टवेयर, मशीन अनुवाद, ई-महाशब्दकोश आदि का अधिकाधिक प्रयोग सुनिश्चित करना चाहिए |

हिंदी के विकास, विस्तार एवं वैश्वीकरण में हिंदी रंगमंच,हिंदी चलचित्र, हिंदी वीडियो एवं हिंदी टेलीविज़न धारावाहिकों का प्रमुख योगदान रहा है। आधुनीकरण के प्रभाव में प्रवाहित नारों तथा संदेशों ने भी हिंदी को ऐसे सहज सरल रूप सौंपे, जिन्होंने उसके विकास और विस्तार को सुगम बनाया। ‘ मिले

सुर मेरा तुम्हारा तो सुर बने हमारा' – एक ऐसा नारा और संदेश था, जिसका भाव लगभग सभी देशों में प्रसारित और स्थापित हुआ। कुछ ऐसे संदेश भरे नारे हैं जो कालजयी भी हैं, उदाहरण स्वरूप ' वंदे मातरम ' और 'झंडा ऊंचा रहे हमारा' जनमानस के समक्ष विद्यमान हैं । भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में जनित और प्रयुक्त ये संदेश विभिन्न धुनों और लयों में प्रवाहित होकर विश्व के अनेक-अधिकांश कोणों में प्रसारित हो चुके हैं।

विदेश मंत्रालय द्वारा विश्व हिंदी सम्मेलन और अन्य अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों के माध्यम से हिंदी को लोकप्रिय बनाने का कार्य किया जा रहा है । विश्व हिंदी सम्मेलन ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभायी है । दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन से पहले जो सम्मेलन आयोजित हुए हैं ,अधिकांशतः साहित्य तक ही सीमित हैं । परंतु इसके बाद विश्व हिंदी सम्मेलनों में आज की मांग के अनुरूप अन्य विषयों को भी स्थान मिला है ।आज यूनेस्को की सात भाषाओं में हिंदी को मान्यता मिली है। हमें मालूम है कि हमारे पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेई प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में हिंदी में भाषण देकर सबको चौंका दिया।

संविधान के अनुच्छेद तीन सौ इक्कावन में संघ सरकार को यह महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया कि वह अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाये और उसका विकास करे, ताकि हिंदी भारतीय संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके । किसी भी लोकतांत्रिक देश में जनता और सरकार के मध्य जन-जन की भाषा ही संपर्क भाषा के रूप में सार्थक भूमिका निभा सकती है। हिंदी भारतीय संस्कृति के मूल तत्व की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ-साथ भारत की भावात्मक एकता को मज़बूत करने का भी सशक्त ज़रिया है । हिंदी भाषा की प्रकृति सामासिक है, यानी यह केवल संघ की राजभाषा और हिंदी भाषी प्रदेशों की हिंदी ही नहीं है बल्कि पूरे देश की भाषाओं के स्वरूपों, पदों, शैलियों, मुहावरों और वाक्यांशों को आत्मसात करनेवाली हिंदी भी है। मुख्य रूप से संस्कृत से और गौण रूप से अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द-ग्रहण करते हुए अपनी शब्द संपदा में वृद्धि करती है।

आज वैश्विक स्तर पर यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी भाषा अपनी लिपि और ध्वन्यात्मकता के लिहाज़ से सबसे शुद्ध ,व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक भाषा है। हिंदी लिखने के लिए प्रयुक्त देवनागरी लिपि अत्यंत वैज्ञानिक है। यह तो सरल एवं लचीली भाषा है, साथ ही दुनिया की सर्वाधिक तीव्रता से प्रसारित हो रही भाषाओं में से एक है। यह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने आप को परिष्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त है । यह जनसंचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश-विदेश में प्रयुक्त हो रही है। माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, याहू ,आई बी एम तथा ओरेकल जैसी विश्व स्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाज़ार एवं भारी मुनाफे को देखते हुए हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं । आज अंग्रेज़ी के दबाव के बावजूद भी हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्व मन के सुख-दुख, आशा, आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है ।

संदर्भ सूची : -

1.हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ.शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ – 90, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1990

2.भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, डॉ.रामविलास शर्मा ,पृष्ठ.73, राजकमल प्रकाशन, 1987

◆एसोसिएट प्रोफेसर और अध्यक्षा,
हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय
डॉ.पी.के.राजन मेमोरियल कैंपस, नीलेश्वर,
कासरगोड,
पिन –671314,केरल।
मोबाइल नंबर.828918100
preethamandeep@gmail.com

‘पॉल गोमरा का स्कूटर’ कहानी में उत्तराधुनिक समय की पहचान

◆ डॉ. सी. बालसुब्रह्मण्यन

हर लेखक अपने ढंग से अनूठा है और उनकी प्रत्येक रचना अपने ढंग से अनूठी भी होती है। हर रचना जीवन-जगत की तरफ खुलनेवाली एक नई खिड़की होती है, उसमें अपने ढंग से जीवन का सौन्दर्यात्मक चित्रण होता है। इसलिए प्रत्येक रचना जीवन की तरह बहुआयामी और बहुस्तरीय होती है, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों से संबंधित भी, जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक या और कुछ। इसलिए एक साहित्यिक रचना की व्याख्या एकाधिक दृष्टियों से ज़रूरी है। ऐसी अनंत व्यख्याओं की हठात्-माँग करनेवाली रचना है ‘पॉल गोमरा का स्कूटर’। इस कहानी की शब्द-रचना के माध्यम से उसके अर्थ तक या अर्थ की परतों और आयामों तक पहुँचने के सिलसिले में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक या अन्यान्य संदर्भों का जो जटिलता ना-बाना काम करता है, वही इस कहानी की अनंत व्याख्याओं को संभव बनाता है। सहृदय-मनीषी पाठक या आलोचक अपनी तरह अर्थात् अपनी समझ, अपनी मान्यताओं, अपने ज्ञान के स्तरों, अपनी बहुज्ञता के आयामों या कभी अपने पूर्वग्रहों के बल पर प्रत्येक वाचन-आस्वादन या मूल्यांकन के अवसर पर इस कहानी के पाठ की पुनर्रचना करता है। पुनर्रचना की प्रक्रिया के सिलसिले में कहानी लोगों का ध्यान विभाजित करनेवाले उत्तराधुनिक खेल के रहस्य का उद्घाटन करती है। उत्तराधुनिकता, उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांत और विमर्शवाद ने आज हमारे सामाजिक जीवन को हिंसक मोड़ पर, बंदगली में खड़ा कर दिया है। इस परिदृश्य में औपनिवेशिक-पूँजीवादी-सामंतवादी ताकतों का ध्वंस, मीडिया की ताकत, विज्ञापन की ताकत, बाज़ार की ताकत सबकुछ हैं। इस परिदृश्य का शिकार है हिन्दी के अगुआ-अवाँगार्द लेखक पॉल गोमरा।

‘पॉल गोमरा का स्कूटर’ एक ऋजु रेखीय शैली में एक सरल सा मामूली विषय की व्याख्या या उसका चित्रण करनेवाली रचना नहीं है। कहानी में अंकित विषय जी वन की तरह अत्यंत जटिल है। विषय जटिल होने के कारण भाषा-शैली में भी स्वाभाविक रूप से जटिलता आ गई है। इसलिए आलोच्य कहानी परंपरागत आस्वादन-आलोचना प्रणाली के लिए वशीभूत होनेवाली नहीं है। इसकी भाषा-एकार्थी नहीं, इसमें बहुअर्थी भाषा-व्यवस्था होती है। यह वर्तमान जीवन-यथार्थ की ज़्यादा बड़ी ज़मीन का स्पर्श करती है।

‘पॉल गोमरा का स्कूटर’ में आद्यंत वर्तमान जीवन मूल्यों से अधिक मूल्यों के पतन या ह्रास पर सशक्त क्षोभ की अभिव्यक्ति है। उदाहरण के लिए - “और सचिवालय, ... वहाँ एक सचिव ऐसा था जो अपनी आठ साल की बेटी के साथ किसी होटल के रूम में अपने साथियों के साथ अप्राकृतिक मैथुन कर रहा था, दूसरा अपने विभाग के अधीन मिलनेवाले सारे पुरस्कारों, अनुदानों और पदवियों को अपनी जेबों में भर रहा था, तीसरा, एक कुख्यात तस्कर और कोलानाइज़र को किसी प्राइम एरिया का फर्जी अधिकार पत्र देकर दक्षिण दिल्ली के पॉश इलाके में अपना शानदार बँगला बनवा रहा था, चौथा मिसाइल और परमाणु ईंधन की राष्ट्रीय सुरक्षा की

दृष्टि से अत्यंत गोपनीय जानकारी शत्रु देश की खुफिया एजेंसी को बेच रहा था, पाँचवाँ अपनी मातहत के नितंबों की चिकोटी काट रहा था, छठा अपने भाई, नाते-रिश्तेदारों और चापलूसों को धडाधड नौकरियाँ, फेलोशिप और खिताब बाँट रहा था। और इन सब की तरक्की हो रही थी। और लोकतांत्रिक राज्य का चौथा पाया इस भ्रष्ट और आपराधिक इमारत को मजबूती के साथ थामे हुए थे।'' (पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ. 63)

इस वर्तमान परिदृश्य में राम गोपाल सक्सेना, अर्थात् पॉल गोमरा जैसे हिन्दी के अगुआ-अवाँगार्दक विविक्षित स्थिति में पड़ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। इस दृष्टि से वर्तमान परिदृश्य की ओर उठ गयी एक सशक्त तर्जनी है प्रस्तुत कहानी। अगुआ-अवाँगार्द लेखक पॉल गोमरा समाज के आगे कबीर, प्रेमचन्द जैसे महान लेखकों की तरह मशाल लेकर चलनेवाले हैं। लेकिन वर्तमान भूमंडलीकरण-भूमंडीकरण, नव उपनिवेशीकरण, उदारीकरण आदि 'करण' के ज़माने में समय के पीछे-पीछे रेंगने-घिसटनेवाले कनखजूरे, गोजरा, केंचुआ या घोंधा बनते जा रहे थे। उनमें अपना पिछडा, दकियानूस और निचले दर्जे का नाम 'रामगोपाल सक्सेना' को लेकर गहरा अंतर्द्वंद्व था। इसलिए अपने नाम का विखंडन करके ग्रेट लीजेंडरी हिन्दी पोएट पॉल गोमरा बन जाते हैं। यह कवि और कविता के ज्वलंत संकट की स्थिति है। इस ज्वलंत संकट की अवस्था में यह जान पड़ता है कि कवि पॉल गोमरा जिस वर्तमान यथार्थ से क्षुब्ध हैं, संघर्षग्रस्त हैं उसके साथ न तो वे समझौता ही कर पाते हैं न उसके विरुद्ध कोई कारगर लडाई ही। उनके द्वारा लिखित अधूरी कविताओं की पंक्तियाँ इस क्रुद्ध चेतना के असफल प्रयास को प्रमाणित करनेवाली हैं-

मैं नहीं बन सकता सीवेज पाइप
अपने भीतर से नहीं गुज़र जाने दूँगा मैं
ये सारा की चड, इस सदी की
विष्ठा .....

और एक कविता की पंक्तियाँ हैं -

खाखाखाखाखा
खाखीखीखीखीखा

(पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ. 66)

कहानीकार के ही शब्दों में - ''इनमें अराजकता थी, फ्रस्ट्रेशन और कुंठाएँ थीं, उन्माद था, पागलपन के लक्षण थे या किसी गहरी लेकिन लाचार घृणा और निर्विकल्प, अनुर्वर और बाँझ क्रोध की अभिव्यक्ति थी, यह कहना मुश्किल है।'' (पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ. 67)

इस परिदृश्य में, नई सभ्यता के परिदृश्य में सत्ता की आकांक्षा लेखक की मृत्यु है - ''पॉल गोमरा को याद आ जाता है कि पिछले पाँच सालों में हिन्दी भाषा के इनके जैसे ही लगभग डेढ-दो दर्जन कवियों-लेखकों ने कीटाणु नाशक द्रव पीकर या सीलिंग के हुक में रस्सी से फंदा लगाकर आत्महत्याएँ कर डाली थीं। कुछ को अज्ञात लोगों ने मार डाला था- (पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ. 62)। यहाँ गौरतलब बात यह है कि कविता का सरोकार सत्य से, सौन्दर्य और संवेदना से है और यही सब से ज़्यादा खतरे में है। कवि पॉल गोमरा द्वारा लिखित अधूरी और असंगत लगनेवाली कविताएँ इस शोचनीय स्थिति का पर्दाफाश करनेवाली हैं। दरअसल पॉल गोमरा बचपन से ही कुछ और नहीं, सिर्फ कवि बनना चाहते थे जो एक बिल्कुल निरापद, खाली और निर्जन क्षेत्र था। लेकिन नए यथार्थ ने उनसे वह स्वप्न भी छीन लिया था। वे महसूस करते हैं कि भूमंडलीकरण, आर्थिक सुधार और तकनीकी क्रांति ने दुनिया को एक बेहतर जगह बनाने का स्वप्न दिखाकर एक खूबसूरत नरक में बदल दिया है। कवि पॉल गोमरा जिस उत्तराधुनिक समय में जी रहे हैं, वहाँ दरअसल स्मृतियों की पोटली रखने के लिए तक कोई जगह नहीं बची है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार उदय प्रकाश अपने ढंग से समय को देखते हैं, उसकी पहचान करते हैं, उसके संकट को

समझते है और समय को अन्वेषित भी करते हैं। उनके समय का अन्वेषण समय की पहचान से जुड़ा है।

आधार ग्रंथ :

पॉल गोमरा का स्कूटर, उदय प्रकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1996

◆ सह आचार्य, हिन्दी विभाग
सरकारी विक्टोरिया कॉलेज, पालक्काड - 678 001
मोबाइल: 94962 92616
ईमेल: porulukal@gmail.com

जयप्रकाश कर्दम की कविताओं में सामाजिक यथार्थ

◆ **दिनेश अहिरवार**

सारांश :- प्रस्तुत लेख हिन्दी दलित साहित्य के महत्वपूर्ण कवि-चिन्तक जयप्रकाश कर्दम की कविताओं पर केन्द्रित है । उनकी कविताओं में दलित जीवन का संघर्ष और सामाजिक समानता की पक्षधरता पर बल दिया गया है । जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कविताओं के मार्फ़त भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त सामाजिक असमानता और जातिगत शोषण की समस्याओं के यथार्थ को बेहद संजीदगी के साथ उठाया है । इस लेख के माध्यम से जयप्रकाश कर्दम की दलित चेतना से लैस कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है ।

बीज शब्द :- दलित, साहित्य, कविता, समाज, मनुष्यता, समानता, अधिकार, जातिवाद, हिंसा, शोषण, वंचित आदि।

मूल आलेख :-

साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होने से समाज में घटित घटनाएँ साहित्य में अधिक प्रभावशाली ढंग से उभरकर आती हैं, जो आम जन तक आसानी से पहुँचती हैं। साहित्य समाज की समस्याओं को उद्घाटित करने का सबसे सशक्त माध्यम है। हिन्दी के विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के मार्फ़त समाज की समस्याओं को मुस्तैदी के साथ उठाने का सार्थक प्रयास किया है। भारतीय समाज-व्यवस्था में हज़ारों वर्षों से दलित जाति के लोगों को उन तमाम अधिकारों से वंचित रखा गया है, जिनसे उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता था। दलित साहित्य के रचनाकारों ने भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त सामाजिक असमानता और जातिगत शोषण की समस्या को प्रमुख विषय बनाया है ।

जयप्रकाश कर्दम हिन्दी दलित साहित्य के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं । इनका जन्म 1959 ई. में गाज़ियाबाद के पास इन्द्रगढ़ी गाँव के एक दलित परिवार में हुआ। उन्हें आर्थिक रूप से कमज़ोर और दलित परिवार में जन्म होने से समाज की विभिन्न जातिगत समस्याओं का सामना करना पड़ा । चूँकि जयप्रकाश कर्दम दलित समुदाय से संबंधित हैं तो इनकी कविताओं में दलित जीवन की समस्याओं और उनके जीवनानुभवों की अनेक छवियाँ देखने को मिलती हैं । यही कारण है कि इनके साहित्य में दलित जीवन की संवेदनशीलता और विभिन्न अनुभव सच के अधिक निकट देखने को मिलते हैं । जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ दलितों के जीवन-संघर्ष और उनकी सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित हैं । इनकी कविताओं का मूल विषय वर्णभेद और जातिभेद से उपजी सामाजिक समस्याएँ हैं ।

जयप्रकाश कर्दम के सन्दर्भ में कंवल भारती लिखते हैं कि "यह ऐतिहासिक सत्य है कि सवर्णों के गढ़ में और उनकी दलित-विरोधी व्यवस्था में दलितों ने प्रायः चुप रहकर और बरदाश्त करके ही अपने विकास की सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। यदि वे आपा खो देते, तो आज जितने शिक्षित हैं, उसके आधे भी नहीं पढ़ पाते। हालाँकि सवर्ण उन्हें इसीलिये अपमानिक करते थे कि वे 'आपा' खोयें, पर दलितों को उनके अभिभावकों ने समझाया हुआ था कि उन्हें इसी विरोधी माहौल को

झेलकर आगे बढ़ना है, यदि तुम आपा खो बैठोगे, तो अनपढ़ ही रह जाओगे। और, निस्संदेह, जिन दलितों ने अपमान बरदाश्त नहीं किया, वे अपमान करनेवाले सवर्ण अध्यापकों और छात्रों को मार-पीटकर भाग आये और अनपढ़ ही रह गये। इन गरीब दलितों को सवर्णों की व्यवस्था में क्या-क्या झेलना पड़ा, इसका मार्मिक वर्णन जयप्रकाश कर्दम ने 'बेमानी है आज़ादी' कविता में किया है।"[1]

'बस्तियों से बाहर' कविता संग्रह की कविताओं के संबंध में उसकी भूमिका में जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि "इस संग्रह की समस्त कविताओं का स्वर और तेवर एक जैसा नहीं है । इनमें कई तरह के उतार-चढ़ाव और विविधताएँ हैं । ये कविताएँ किसी एक मनः स्थिति की अभिव्यक्ति भी नहीं हैं । संग्रह की प्रतिनिधि कविता 'बस्तियों के बाहर' यदि आज के समय का ज्वलंत प्रश्न है, और इसे मानव-प्रगति के तमाम मॉडलों पर एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी के रूप में भी देखा जा सकता है ।"[2] 'हरिजन' कविता में परम पिता कहे जानेवाले ईश्वर का खंडन करते हैं और अपने माता-पिता को ही सबकुछ मानने के पक्षधर हैं, जिसकी वे संतानें हैं। इस कविता के माध्यम से हरिजन कही जानेवाली ईश्वरीय सत्ता का खंडन इसलिए करते हैं कि हरिजन शब्द का अर्थ दलित वर्ग के लोगों के लिए प्रयोग किया जाता है । जाति का दंश झेल रहे दलितों पर केन्द्रित एक कवितांश दृष्टव्य है –

"काम से अधिक बात बोलती है
मुँह से अधिक लात बोलती है
आदमी से अधिक जाति बोलती है ।
इस देवभूमि पर
देवों के लिए जाति एक गर्व है
सामाजिक पर्व है
लेकिन जनों को यह
घुन की तरह खाती है
जोंक की तरह चूंसती है
सर्प की तरह डसती है
जाति की गति आदमी से तेज़ होती है
जहाँ भी जाता है आदमी
उससे पहले पहुँचती है उसकी जाति ।"[3]

जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ आक्रोश और लाउडनेस से मुक्त होकर जीवन के अनुभव और गंभीर विचारों की तार्किकता बेहद संजीदगी के साथ अभिव्यक्त करती हैं । यही कारण है कि उनकी कविताएँ अधिक प्रभावशाली और प्रतिपक्ष को भी विचार करने के लिए विवश करती हैं । उनकी कविताओं में मनुष्यता और मानवीय अस्मिता की खोज बेहद करीब से देखी जा सकती हैं। वे दलितों के सामाजिक बहिष्कार के स्पष्ट विरोधी और मनुष्यता के पक्षधर कवि हैं ।'जुर्म' कविता में वे लिखते हैं कि –

"आज फिर सजा दी गई
एक दलित युवक को
मार दिया गया सरे-आम
पीट-पीटकर
घोड़ी रखने और उस पर
सवारी करने के
सामाजिक अपराध में ।"[4]

'मनुस्मृति के देश में' कविता में आज के आधुनिक समय की कटु सच्चाई की निर्मम और प्रासंगिक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं । हिंसात्मक प्रवृत्ति से दलित-वंचितों के अधिकार छीनने और उन्हें समाज में जलील करने की हज़ारों वर्षों की परम्परा आज भी विद्यमान है । वे लिखते हैं कि –

"मारे जाएँगे
एक-एक कर सब मारे जाएँगे
बेइज्जत किया जाएगा सरे आम
घुमाया जाएगा नंगा करके
गाँव के बीच
मारा जाएगा बेरहमी से
लात-घूँसों और डंडों से ।"[5]

दलित वर्ग जातिगत भेदभाव का हमेशा से ही शिकार रहा है और आज भी है । समाज के उच्च जातिवर्ग द्वारा आज भी दलितों का सामाजिक-आर्थिक शोषण किया जा रहा है । उन्हें बर्दाश्त नहीं होता कि कोई निम्न जाति का इंसान उनकी बराबरी करे । दकियानूसी मानसिकता इतनी गहरी पैठ जमायी हुई है कि शादी में घोड़ी पर बैठना भी मुनासिब नहीं समझते। मंदिरों में प्रवेश करने से मंदिर अशुद्ध हो जाता है, ऐसे तमाम उदाहरण हैं जो एक

संकुचित मानसिकता से ग्रसित होने के प्रमाण हैं । वे लिखते हैं कि –

"अखरता है तुम्हें
तुम्हारी तरह दूल्हा बन
घोड़ी पर चढ़कर मेरा निकलना
तुम्हारे मंदिरों में जाकर पूजा करना
चाय की दुकान पर
उन्हीं कप-प्लेट में चाय पीना
जिनमें पीते हो तुम ।"[6]

जयप्रकाश कर्दम अपनी कविताओं में बार-बार ईश्वर को नकारने की बात करते हैं, जिसका मुख्य कारण ईश्वर के नाम पर दलितों को लूटा गया, भय पैदा किया गया कि यदि ऐसा नहीं होगा तो पाप के भागीदार होंगे और वे पाप-पुण्य के जाल में फँसाये जायेंगे। धर्म, आस्था और भक्ति के नामों पर सवर्ण अपने स्वार्थों को सिद्ध कर

निष्कर्ष :-

हम कह सकते हैं कि जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्हें सदियों से सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया। उनकी कविताएँ एक ओर जहाँ सामाजिक यथार्थता से रू-ब-रू कराती हैं तो वहीं दूसरी ओर समस्याओं की पड़ताल भी करती हैं । ये कविताएँ मनुष्य और मनुष्यता के बीच के अंतर को पाटने के सार्थक और महत्वपूर्ण प्रयास हैं । जयप्रकाश कर्दम की ये कविताएँ मनुष्य और समाज को नए ढंग से देखने, समझने और परिभाषित करने के सार्थक प्रयास हैं। इन कविताओं से गुज़रना पाठकों के लिए एक नया अनुभव तो होगा ही, साथ ही एक नयी चेतना और मनुष्यता की पक्षधर वैचारिकी से भी रू-ब-रू होगा। शोषित, वंचित और दलित लोगों की यातना, संघर्ष, स्वप्न और जिजीविषा की सार्थक अभिव्यक्तियाँ हैं जय प्रकाश कर्दम की कविताएँ। हिन्दी में दलित साहित्य के विकास, उसको स्थापित करने और परंपरागत हिन्दी साहित्य के समांतर दलित साहित्य के बुनियादी सरोकारों को उजागर करने में जिन प्रमुख दलित साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उनमें डॉ.जयप्रकाश कर्दम एक महत्वपूर्ण नाम है। उन्होंने सरल, सहज, सुबोधगम्य और प्रभावशाली भाषा में अपनी कविता, कहानी, उपन्यास और दलित चिंतन की वैचारिकी के मार्फ़त सामाजिक यथार्थता को हम सबके समक्ष प्रस्तुत किया है ।

रहे हैं और दलितों को उस समाज से बहिष्कृत रखा गया है जिस समाज के वे ईश्वर की पूजा और धर्म को मानते रहे हैं । समाज से बहिष्कार और दमन की पीड़ा से उपजी जयप्रकाश कर्दम की ये कविताएँ सामाजिक समानता और मनुष्यता की पक्षधर हैं, जिनमें मनुष्य जाति के प्रति कोई विभेद नहीं है तथा जातिवादी विचारधारा का खंडन भी किया गया है। वे अपनी कविता 'मनुष्यता के साम्राज्य का नागरिक' में लिखते हैं कि –

"ईश्वर के साम्राज्य का नागरिक नहीं हूँ मैं
त्याज्य है मेरे लिए ईश्वर और उसकी दुनिया
समाज-बहिष्कृत रहा मैं सदियों से
जिस ईश्वर के साम्राज्य में
बहिष्कृत है मेरी दुनिया से आज वह ईश्वर ।"[7]

सन्दर्भ सूची :–

1. https://www.forwardpress.in/2022/12/literature-dalit-history-1990s-4/
2. जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृष्ठ – 3
3. वही,पृष्ठ – 10
4. जयप्रकाश कर्दम, लाशों के शहर में,कलमकार प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ – 10
5. वही, पृष्ठ – 13
6. वही, पृष्ठ – 17
7. जयप्रकाश कर्दम, विषाक्त हवाओं के बीच, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ – 5

◆ पी-एच.डी.–शोधार्थी, हिन्दी विभाग
(कक्ष क्र. –128, बिरला – 'ब' हॉस्टल)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। (उ.प्र.)
dineshsagarbhu19@gmail.com

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14, Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha